नवनिधि

भगवद्दत्त बी० ए०

मेहरचंद लक्ष्मणदास हिन्दी-पुष्पमाला—नं० १७

नवनिधि

हिन्दू-मुस्लिम नौ प्रतिनिधि हिन्दी-कवियों
की चुनी हुई कविताओं का संग्रह

सम्पादक

भगवद्दत्त बी० ए०

प्रकाशक

मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास

संस्कृत-हिंदी पुस्तक-विक्रेता

सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर

द्वितीय संस्करण

१९३९

प्रकाशक—
लाला तुलसीराम जैन, मैनेजिंग प्रोप्राइटर, मेहरचंद्र लक्ष्मणदास, संस्कृत हिंदी पुस्तक विक्रेता, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर।

मुद्रक—
लाला खज़ानचीराम जैन, मैनेजर, मनोहर इलेक्ट्रिक प्रेस, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर।

भूमिका

आदि काव्य, वेद

संसार की विविध रचना भगवान् का काव्य है। इस रचना के सौन्दर्य में लीन होकर मनुष्य अलौकिक रसों का अनुभव करता है। वेद इसी रचना के सूक्ष्म तत्त्वों के दर्शाने के साधन हैं। वेद से बढ़ी हुई कविता संसार भर में दृष्टिगोचर नहीं होती। वेद तो 'देवस्य काव्यम्' परम देव का काव्य है। ऋग्वेद के उषा सूक्त एक अद्वितीय कविता के दृष्टान्त हैं। इन्द्रसूक्त वीर रस से भरे हुए हैं। दानस्तुतियाँ भी कुछ कम महत्त्व नहीं रखतीं। नासदीय सूक्त पर तो प्रसिद्ध जर्मन-विद्वान् पाल डाईसन मुग्ध था। इस प्रकार अत्यन्त प्राचीन काल से विद्वानों के लिए वेद काव्य-धारा का मूल रहा है।

वेद में रहस्यवाद की कविता

जिसे आज रहस्यवाद कहते हैं, उसे कभी आत्मतत्त्व या

योगतत्त्व कहते थे। वेद में इस आत्मतत्त्व की कविता के अनेक उज्ज्वल और हृदयहारी मन्त्र हैं। 'हे भगवन्! तुम सीमारहित समुद्र हो।' अम्भर की कन्या वाक् का सारा सूक्त किसी विलक्षण आन्तरिक घटना का द्योतक है। देखिए—'मैं रुद्रों और वसुओं के साथ चलती हूँ। मैं सूर्यों और विश्व देवों के साथ हूँ।' 'मैं ही जिसे चाहूँ उसे ब्रह्मा, ऋषि अथवा दिव्य शक्ति वाला कर दूँ।'

योगी अरविन्द का कथन है कि वेद के सैकड़ों सूक्त अन्तरात्मा की अनन्त की ओर दौड़ का चित्र खींचते हैं। संसार के लोग अभी कबीर और नानक के ही रहस्यवाद का अध्ययन करके चकित हो रहे हैं। जब वे वेद ऐसे दैवी काव्य का पाठ करेंगे, तो उनके आनन्द का पारावार न रहेगा।

संस्कृत-वाङ्मय के अन्य प्राचीन काव्य

महाभारत के आरम्भ में अनेक दिव्यकर्मा, विक्रमशील, त्यागी, माहात्म्यवान्, आस्तिक, सत्यनिष्ठ, पवित्र और ऋजुगुण-सम्पन्न प्राचीन महाबल राजाओं का उल्लेख किया गया है। इसके पश्चात् वहाँ यह भी लिखा है कि उनके इन कर्मों का वर्णन बड़े-बड़े विद्वान् कविसत्तमों ने किया है। उन कवि-शिरोमणियों के वे सब ग्रन्थ अब कहाँ हैं। वस्तुतः वे सब काल के ग्रास हो गये। आर्यों के प्रमाद, संस्कृत विद्या के ह्रास, आक्रमणकारियों की मदान्धता और वर्तमान पाश्चात्त्य सभ्यता की नास्तिकता के कारण उन ग्रन्थों का अब नामशेष भी नहीं रहा।

वाल्मीकि और व्यास

फिर भी दो कवि हैं, जिनके ग्रन्थ हम तक पहुँच पाये हैं। वे दोनों ही दो महाकाव्यों के रचयिता हैं। वे भारत ही नहीं प्रत्युत संसार भर के कविरत्न हैं। जिस प्रकार भारत में सहस्रों वर्षों से हिमालय अपना सिर ऊँचा किये खड़ा है, उसी प्रकार यहाँ रामायण और महाभारत भी अपना सिर ऊँचा किये विद्यमान हैं। भारत के कितने श्रेष्ठ कवि हैं, जिन्होंने इन महाकाव्यों की कीर्ति नहीं गाई। वररुचि और भास, अश्वघोष और कालिदास, भवभूति और माघ, चन्द और तुलसी सब ही ने इन कविप्रवरों की स्तुतियों से अपनी लेखनियाँ पवित्र की हैं।

कौन-सा रस है अथवा मानव-जीवन का कौन-सा विषय है, जिस पर वाल्मीकि और कृष्ण द्वैपायन ने प्रकाश नहीं डाला। इनके ग्रन्थों का पढ़ने से ही सम्बन्ध है। और इन मूल ग्रन्थों के पढ़े बिना कौन है, जो भारत में विद्वान् कहला सकता है।

भारत-उत्तर काल के कवि

महामुनि पतञ्जलि ने किसी वाररुच काव्य का उल्लेख अपने महाभाष्य में किया है। वररुचि-कृत एक भाण भी अब मुद्रित हो चुका है। इस भाण से प्रतीत होता है कि वररुचि पर सरस्वती देवी की अपार कृपा थी। वररुचि के श्लोकों में भावप्रदर्शन का एक अनूठा आनन्द मिलता है। वही भास, जो कुछ वर्ष पूर्व एक स्वप्नमात्र समझा था, आज घर-घर का नाम हो रहा है। उसकी

कृतियाँ शिक्षित समाज को एक बार फिर प्रफुल्लित कर रही हैं। अश्वघोष का सुषुप्ति-काल भी अब समाप्त हो चुका है। बुद्ध-चरित और सौन्दरनन्द की सरस रचना किसे नहीं मोह रही। यदि अश्वघोष का राष्ट्रपालचरित नाटक भी मिल गया तो फिर उसकी सूक्तियाँ कालिदास और भवभूति से कितनी टक्कर लेंगी, यह नहीं कहा जा सकता। ये हुए संस्कृत-काव्याकाश के देदीप्यमान सूर्य। संस्कृत-वाङ्मय की जो दिन-दिन खोज हो रही है, उससे इनकी टक्कर के कितने और कवि उपलब्ध होंगे, यह अभी भविष्य की बात है।

प्राकृत और अपभ्रंश के कवि

हाल या सातवाहन की प्राकृत भाषा में लिखी गई गाथा-सप्तशती अब बहुत प्रसिद्ध हो चुकी है। प्राकृत रचनाओं में इसका स्थान बहुत ऊँचा है। दिवंगत पं० पद्मसिंह शर्मा ने अपनी बिहारी की आलोचना द्वारा हिंदी-जगत् को इस काव्य का भी थोड़ा-सा ज्ञान करा दिया है। अपभ्रंश-साहित्य भी कभी बड़ा विशाल था। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में इस विषय का संकेतमात्र किया है। अपभ्रंश-साहित्य के अब तक अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। हिंदी-संसार में अभी उनका उल्लेख भी नहीं हुआ। धनपालविरचित भविसयत्तकहा इसी प्रकार का एक बड़ा ग्रन्थ है। यह काव्य बाईस सन्धियों में समाप्त हुआ है। अपभ्रंश काव्य के पण्डित अभी अपने देश में कम हैं, अतः इसके विषय में कुछ अधिक नहीं कहा जा सकता।

हिन्दी कवि

वेद के पश्चात् संस्कृत, संस्कृत के पश्चात् प्राकृत, प्राकृत के पश्चात् और साथ-साथ अपभ्रंश और अपभ्रंश के पश्चात् और साथ-साथ हिन्दी-काव्य का उदय हुआ। हिन्दी-काव्य का संसार की कविता में एक उत्कृष्ट स्थान है।

प्रस्तुत संग्रह

हिन्दी का विशाल साहित्य-भाण्डार आर्य और मुसलमान दोनों ही कवियों ने भरा। उस समय के साहित्यिक मुसलमान पक्षपाती नहीं थे। वे राम और कृष्ण में उतनी ही श्रद्धा-भक्ति रखते थे, जितनी कि हिन्दू कवि। उनके हिन्दी-साहित्य में अरब के स्वप्न नहीं हैं। उनकी हिन्दी हिन्दी ही है, हिन्दुस्तानी नहीं। जायसी को पढ़कर कौन हिंदू कहेगा कि वह हमारा नहीं है। कवि-शिरोमणि तुलसीदास ने उसकी गुण-गरिमा को देखकर ही अपने काव्य में बहुधा उसका अनुकरण किया।

आलम तो थे ही ब्राह्मण। पर रसखान मुसलमान होते हुए भी हिंदू-धर्म के प्रभाव से प्रभावित थे। इस नवनिधि में ये तीन कवि हिंदी-कविता के प्रति मुसलमानों का भाव प्रकट करने के लिए रक्खे गये हैं। उस काल के और आजकल के मुसलमान कवियों में भूतलाकाश का अन्तर हो गया है।

इस संग्रह के शेष छः कवि हिंदू हैं। श्री जगन्नाथदास रत्नाकर उनमें अन्तिम हैं। वे संवत् १९८९ तक तो हमारे

ही मध्य में थे। पंजाबी विद्यार्थी तुलसी और सूर, रहीम और कबीर आदि से तो विशेष परिचित हैं, पर जायसी आदि का उन्होंने नाम ही श्रवण किया है। इसलिए प्रस्तुत संग्रह में ऐसे कवियों की अमृतवाणी रक्खी गई है, जो हिंदी-काव्य-संसार के रत्न हैं, पर जिनसे यहाँ के विद्यार्थी कम परिचित हैं।

संग्रह के अन्त में हमने कठिन शब्दों का अर्थ देकर पुस्तक के समझने का मार्ग सरल करने का यत्न किया है। आशा है, हिन्दी-प्रेमी इस संग्रह से लाभ उठावेंगे।

माडलटाऊन,
लाहौर

भगवद्दत्त

कवि-सूची

१

मलिक मुहम्मद जायसी
मुस्लिम कवि

जीवन-परिचय

मलिक मुहम्मद जायसी का वास्तविक नाम मुहम्मद था। जायस ग्राम में रहने के कारण ये जायसी कहलाते थे और मलिक इनकी उपाधि थी। जायस रायबरेली का एक क़स्बा और रेलवे स्टेशन है।

कई कहते हैं कि इनका जन्म ग़ाज़ीपुर में हुआ था। इनकी एक चौपाई से भी कुछ ऐसा ही भ्रम पड़ता है कि इनका जन्म जायस में नहीं हुआ। आपने पद्मावत में लिखा है—

जायस नगर धरम अस्थानू,
तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू।

इससे यही स्पष्ट होता है कि इन्होंने कहीं बाहर से आकर जायस में पद्मावत की रचना की।

इनका जन्म एक दरिद्र कुल में हुआ था। बाल्यावस्था में ही शीतला निकलने के कारण इनकी एक आँख जाती रही और चेहरा

कुरूप सा हो गया। इसी समय में इनकी माता का भी देहांत हो गया। पिता की मृत्यु शीतला निकलने से पूर्व ही हो चुकी थी। अतः ये अनाथ होकर साधु फ़क़ीरों के साथ फिरने लगे। उनकी संगति में रहकर इन्होंने बहुत कुछ सीखा। वेदान्त और योग क्रिया की भी बहुत सी बातें इन्हें ज्ञात थीं। पदमावत में स्थान २ पर इन्होंने अपने इस ज्ञान का अच्छा परिचय दिया है। अखरावट में तो मुख्यता ही वेदान्त की है।

कुछ समय के पश्चात् बहुत से लोग इनके शिष्य हो गये। वे शिष्य प्रायः इनके बनाये 'बारहमासे' गाया करते थे। इनका एक चेला अमेठी आया। वह इनका बनाया हुआ नागमती का बारह मासा गा-गाकर घर-घर भीख माँगने लगा। एक दिन अमेठी के राजा ने भी उसे सुना। उन्होंने उसे बहुत पसंद किया और उसके रचयिता का परिचय पूछा।

परिचय पाकर राजा ने मलिक मुहम्मद जायसी को लाने के लिये अपना एक सरदार भेजा। तब से ये अमेठी में ही रहने लगे। राजा निस्सन्तान था, इन्हीं के वरदान से उसका वंश चला। तब से तो इनकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई। अंत में इनका देहांत भी वहीं हुआ। राजा ने अपने प्रासाद से उत्तर की ओर थोड़ी दूर पर इनकी क़ब्र बनवा दी, जो अब भी विद्यमान है।

एक दिन अवध के किसी व्यक्ति ने इनकी कुरूपता देख हँस दिया, इस पर इन्होंने बड़े धैर्य से कहा—

"मोहिं का हससि कि कोहरहिं"

अर्थात्—मुझ पर हँसते हो या उस कुम्हार पर, जिसने मेरी ऐसी शक्ल बनाई है ? इस पर वह व्यक्ति बड़ा लज्जित हुआ और उसने इनके पैरों पर पड़कर क्षमा माँग ली।

आपके मृत्यु-संवत् का अभी तक कुछ पता नहीं चल सका। इनकी दो पुस्तकें पद्य में मिलती हैं—'पदमावत' और 'अखरावट'। पदमावत में रानी पदुमावति की कहानी लिखने में तो इन्होंने बड़ी उत्कृष्टता दिखाई है। यद्यपि उसकी भाषा कुछ ग्रामीण सी है तथापि उसमें रूपक, उपमा इत्यादि का समावेश ऐसी सुंदरता से किया गया है कि कहते ही बनता है। सारी की सारी कथा दोहे और चौपाइयों में है। यद्यपि आप मुसलमान थे तथापि हिन्दू देवताओं के विषय में जो इन्होंने भक्ति दिखलाई है, वह अनुपम है।

अखरावट की रचना पदमावत के पश्चात् हुई। इसमें 'क' से लेकर प्रायः सभी अक्षरों पर कविता की गई है। इसमें भगवद्भक्ति तथा संसार की असारता बतलाई है।

पदमावत का एक अत्यन्त श्रेष्ठ संस्करण हमारे मित्र डा० सूर्यकान्त एम० ए० ने पञ्जाब विश्व-विद्यालय की ओर से सन् १९३४ में प्रकाशित किया है।

पद्मावत

राजा-सुआ-संवाद

राजइ कहा सत्त कहु सूआ। बिनु सत कस जस सेवँरि भूआ ॥
होइ मुख रात सत्त कह बाता। जहाँ सत्त तहँ धरम सँघाता ॥
बाँधी सिसिटि अहइ सत केरी। लछिमी आहि सत्त कइ चेरी ॥
सत्त जहाँ साहस सिधि पावा। अउ सत-बादी पुरुख कहावा ॥
सत कहँ सती सँवारइ सरा। आगि लाइ चहुँ दिसि सत जरा ॥
दुइ जग तरा सत्त जेइ राखा। अउरु पिआर दइहि सत-भाखा ॥
सो सत छाँड जो धरम बिनासा। का मति हिअइ कीन्ह सत-नासा ॥

तुम्ह सयान अउ पंडित अ-सत न भाखहु काउ।
सत्त कहहु तुम्ह मो सउँ दहुँ का कर अनिआउ ॥

चौपाई

सत्त कहत राजा जिउ जाऊ। पइ मुख अ-सत न भाखउँ काऊ ॥
हउँ सत लेइ निसरा एहि पतेँ। सिंघल-दीप राज घर हतेँ ॥

पदुमावति राजा कइ बारी । पदुम-गंध ससि बिधि अउतारी ॥
ससि-मुख अंग मलय-गिरि रानी । कनक सुगंध दुआदस बानी ॥
हहिँ पदुमिनि जो सिंघल माहाँ । सुगँध सुरूप सो तेहि कइ छाहाँ ॥
हीरा-मनि हउँ तेहि क परेवा । काँठा फूट करत तेहि सेवा ॥
अउ पाएउँ मानुस कइ भाखा । नाहिँ त पंखि मूठि भर पाँखा ॥

जउ लहि जिअउँ राति दिन सँवरि मरउँ ओहि नाउँ ।
मुख राता तन हरिअर दुहूँ जगत पइ जाउँ ॥

चौपाई

हीरा-मनि जो कवँल बखाना । सुनि राजा होइ भवँर भुलाना ॥
आगे आउ पंखि उँजिआरे । कहे सो दीप पतिंग के मारे ॥
रहा जो कनक सुबासिक ठाऊँ । कस न होए हीरा-मनि नाऊँ ॥
को राजा कस दीप उतंगू । जेहि रे सुनत मन भएउ पतंगू ॥
सुनि सो समुद चखु भए किलकिला । कवँलहि चहउँ भवँर होइ मिला ॥
कहु सुगंध धनि कस निरमरी । दहुँ अलि संग कि अब-हीँ करी ॥
अउ कहु तहँ जो पदुमिनि लोनी । घर घर सब के होहिँ जस होनी ॥

सबइ बखान तहाँ कर कहत सो मो सउँ आउ ।
चहउँ दीप वह देखा सुनत उठा तस चाउ ॥

चौपाई

का राजा हउँ बरनउँ तासू । सिंघल-दीप आहि कबिलासू ॥
जो गा तहाँ भुलानेउ सोई । गइ जुग बीति न बहुरा कोई ॥

घर घर पदुमिनि छतिस-उ जाती । सदा बसंत दिवस अउ राती ॥
जेहि जेहि बरन फूल फुलवारी । तेहितेहि बरन सुगँधसो नारी ॥
गँधरब-सेन तहाँ बड राजा । अछरिन्ह माँह इँदर बिधि साजा ॥
सो पदुमावति ता करि बारी । अउ सब दीप माँह उँजिआरी ॥
चहूँ खंड के बर जो ओनाहीँ । गरबहि राजा बोलइ नाहीँ ॥

उअत सूर जस देखी चाँद छपइ तेहि धूप ।
अइसइ सबइ जाहिँ छपि पदुमावति के रूप ॥

चौपाई

सुनि रवि नाउँ रतन भा राता । पंडित फेरि इहइ कहु बाता ॥
तुइँ सु-रंग मूरति वह कही । चित महँ लागि चितर होइ रही ॥
जनु होइ सुरुज आइ मन बसी । सब घट पूरि हिअइ परगसी ॥
अब हउँ सुरुज चाँद वह छाया । जल बिनु मीन रकत बिनु काया ॥
किरिनि करा भा पेम अँकूरू । जउँ ससि सरग मिलउँ होइ सूरू ॥
सहस-उ करा रूप मन भूला । जहँ जहँ दिसिटि कवँल जनु फूला ॥
तहाँ भवँर जिउ कवँला गंधी । भइ ससि राहु केरि रिनि-बंधी ॥
तीनि लोक चउदह खँड सबइ परइ मोहिँ सूझि ।
पेम छाँडि किछु अउरु न (लोना) जो देखउँ मन बूझि ॥

चौपाई

पेम सुनत मन भूलु न राजा । कठिन पेम सिर देइ तो छाजा ॥
पेम फाँद जउँ परइ न छूटा । जीउ दीन्ह बहु फाँद न टूटा ॥

गिरिगिट छंद धरइ दुख तेता । खन खन रात पीत खन सेता ॥
जानि पुछारि जो भा बन-बासी । रोवँ रोवँ परे फाँद नग-वासी ॥
पाँखन्ह फिरिफिरि परा सो फाँदू । उडि न सकइ अरुझइ भइ बाँदू ॥
मुएउँ मुएउँ अह-निसि चिललाई । ओहि रोस नागन्ह धरि खाई ॥
पाँडक सुआ कंठ वह चीन्हा । जेहि गिउ परा चाहि जिउ दीन्हा ॥

तीतर गिउ जो फाँद हइ निति-हि पुकारइ दोख ।
सो कित हँकारि फाँद गिउ (मेलइ) कित मारे होइ मोख ॥

चौपाई

राजइ लीन्ह ऊभि कइ साँसा । अइस बोलि जनि बोलु निरासा ॥
भलेहि पेम हइ कठिन दुहेला । दुइ जग तरा पेम जेइ खेला ॥
भीतर दुख जो पेम मधु राखा । गंजन मरन सहइ जो चाखा ॥
जो नहि ँ सीस पेम पँथ लावा । सो पिरिथुमि ँ महँ काहे क आवा ॥
अब मइँ पेम फाँद सिर मेला । पाउँ न ठेलु राखु कइ चेला ॥
पेम-बार सो कहइ जो देखा । जेइ न देख का जान बिसेखा ॥
तबलगि दुख पिरितम नहि ँ मे ँटा । मिला तो गएउ जनम दुख मे ँटा ॥

जस अनूप तुइँ देखी नख-सिख बरन सिँगार ।
हइ मोहि ँ आस मिलइ कइ जउँ मेरवइ करतार ॥

राजा का स्वर्गवास

तौलहि श्वास पेट महँ अही। जौलहि दशा जीउ की रही॥
काल आइ देख लाई साँटी। उठि जिय चला छाँड़ के माटी॥
काकर लोग कुटुम घर बारू। काकर अर्थ द्रव्य संसारू॥
वही घड़ी सब भयो परावा। आपन सोइ जो परसा खावा॥
रहि जे हितू साथ के नेगी। सबै लागि काढ़न तेहि बेगी॥
हाथ झार जस चले जुवारी। तजा राज ह्वै चला भिखारी॥
जब लग जीव रतन सब काहा। भा विन जीव न कौड़ी लाहा॥

गढ़ सौंपा तेहिं बादल गये टेकत वसुदेव।
छोड़ी राम अयोध्या जो भावै सो लेव॥

चौपाई

पदुमावती पुनि पहिर पटोरा। चली साथ पिय के ह्वै जोरा॥
सूरज छिपा रयनि ह्वै गई। पूनो शशि सों अमावस भई॥
छोरे केश मोति लट छूटी। जानो रयनि नखत सब छूटी॥
सेंदुर परा जो शीस उघारी। आग लाग चहि जग अँधियारी॥
यही दिवस हों चाहत नाहीं। चलो साथ पिय दै गल बाहीं॥
सारस पँख नहिं जिये निरारे। हौं तुम विन का जियों पियारे॥
न्योछावर कै तन छहराऊँ। छार होउँ सँग बहुर न आऊँ॥

दीपक प्रीत पतंग ज्यों जन्म निवाह करेउँ।
न्योछावर चहुँ पास ह्वै कंठ लाग जिय देउँ॥

अखरावट

ठा ठाकुर बड़ आप गोसाईं। जेइ सिरजा जग अपनइ नाईं॥
आपुहि आप जो देखइ चहा। आपन प्रभुता आप से कहा॥
सबइ जगत दरपन कै लेखा। आपुहि दरपन आपुहि देखा॥
आपुहि बन औ आपु पखेरू। आपुहि सउजा आपु अहेरू॥
आपुहिं पुहुप फूल बन फूले। आपुहि भँवर बास रस भूले॥
आपुहि फल आपुहि रखवारा। आपुहि सो रस चाखन हारा॥
आपुहि घट घट महँ सुख चाहइ। आपुहि आपुन रूप सराहइ॥

पानी महँ जस बुल्ला तस यह जग उतराइ।
एकहि आवत देखिये एकहि जात बिलाइ॥

सा सासाँ जड़ लहि दिन चारी।
ठाकुर से करि लेहु चिन्हारी॥
अँध न रहहु होइ डिठिआरा।
चीन्हि लेहु जो तोहि सँवारा॥
पहले से जो ठाकुर कीजिअ।
अइसे जिअन मरन नहिं छीजिअ॥
छाड़हु घिउ अरु मछरी मासू।
सूखे भोजन करहु गरासू॥
दूध मास घिव करु न अहारू।
रोटी सान करहु फरहारू॥

यहि विधि काम घटावहु काया।
काम क्रोध तिसना मद माया॥
तब बइठउ बजरासन मारी।
गहि सुखमना पिंगला नारी॥
प्रेम तन्तु तस लागि रहु, करहु ध्यान चित बाँधि।
पारधि जइस अहेर कहँ, लागि रहइ सर साधि॥

२

महाकवि आलम

जीवन-परिचय

आलम सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १७१२ माना जाता है। ये औरंगज़ेब के समय में थे और औरंगज़ेब के पुत्र मुअज़्ज़म के पास रहा करते थे। इनके विषय में एक गाथा प्रसिद्ध है कि एक बार इन्होंने अपनी पगड़ी रँगने के लिये शेख़ रंगरेजिन के पास भेजी। भूल से एक काग़ज़ का टुकड़ा, जिसमें आलम ने आधा दोहा लिखकर फिर किसी समय उसे पूरा करने के लिये बाँध दिया था, बँधा ही रह गया। पगड़ी धोते समय शेख़ की दृष्टि उस पर पड़ गई। जब उसने खोलकर देखा तो उसमें निम्नलिखित आधा दोहा लिखा था—

"कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन।"

शेख़ ने उसकी इस प्रकार पूर्त्ति की—

"कटि को कंचन काटि विधि, कुचन मध्य धरि दीन॥"

पगड़ी रँगकर फिर वह काग़ज़ उसकी एक खूँट में बाँध दिया।

जब आलम को वह पगड़ी मिली और उन्होंने दोहे की पूर्ति हुई देखी तो फूले न समाये और झटपट भाग कर शेख़ के घर गये और उसे एक आना पगड़ी की रँगाई के अतिरिक्त १०००) रुपया दोहे की पूर्ति के दिये। इस पर भी आलम को शान्ति न हुई। उन्होंने शेख़ के सम्मुख प्रस्ताव रक्खा कि वह इनसे विवाह कर ले। पहले तो शेख़ ने इन्कार किया परंतु जब इन्होंने मुसलमान होना स्वीकार कर लिया तो दोनों का विवाह हो गया।

आलम और शेख़ दोनों की कविताएँ प्रेम के चमत्कार से परिपूर्ण हैं। शेख़ के गर्भ से आलम का एक पुत्र भी था। उसका नाम था 'जहान'। एक दिन औरंगजेब के पुत्र शाहज़ादा मुअज़्ज़म ने विनोद स्वरूप शेख़ से पूछा—'क्या आलम (संसार) की औरत आप ही हैं ?' शेख़ बड़ी बुद्धिमती थी। वह समझ गई कि मुअज़्ज़म उससे हँसी कर रहा है, उसने तुरंत उत्तर दिया—'हाँ, जहाँपनाह ! जहान (संसार) की माँ मैं ही हूँ।' मुअज़्ज़म यह सुनकर बड़ा लज्जित हुआ और शेख़ की बुद्धि की सराहना करने लगा।

इन दोनों प्रेमियों की जितनी कविताएँ मिलती हैं, सब में बड़ा चमत्कार है। शेख़ के कवित्तों में श्रीकृष्णचन्द्र के प्रति उसकी अनुपम भक्ति झलकती है। आलम और शेख़ की कविताओं के संग्रह का नाम 'आलम केलि' है। इसके अतिरिक्त 'माधवानल-कामकंदला' नामक ग्रंथ भी इन्हीं का बनाया हुआ है। इधर-उधर पुस्तकों में इनके कुछ फुटकर पद्य भी मिलते हैं।

'माधवानल-कामकंदला' एक प्रेमात्मक कथा है, जो पद्य में रची गई है।

इनकी भाषा साधारण चलती हुई और सरस है। प्रसाद और माधुर्य्य की अच्छी पुट है। इनकी पदावली प्रेमोन्मत्तकारिणी है और उनमें मृदुलता और मंजुलता भरी है। इन पर मुसलमानों का भी पर्याप्त रंग है। उदाहरण के लिए एक पद नीचे दिया जाता है—

दाने की न पानी की न आवे सुध खाने की,
यांगली महबूब की आराम खुस खाना है।
रोज़ ही से है जो राज़ी यार की रजाय बीच,
नाज़ की नज़र तेज़ तीर का निशाना है।
सूरत चिराग़ रोशनाई आशनाई बीच,
बार बार बरै बलि जैसे परवाना है।
दिल से दिलासा दीजै हाल की न ख्याल हूजै,
बेखुद फ़कीर वह आशिक़ दीवाना है॥

नोट—इस संग्रह में हमने शेख़ के भी दो तीन कवित्त रख दिये हैं, जिससे पाठक उनका भी आनन्द उठा सकें।

भँवर गीत

जाके जोग जुगिया जुगत ही सों जोग जागैं,
भगत संजोग बसि अलख अलेख है।
सनक सनन्द सनकादि सिव मुनि जन,
सारद नारद हू के लगत निमेष है॥
'आलम' सुकवि आनि ब्रज नर भेष धर्यो,
ध्यावत हौ जाको ताके नाहिं रूप रेख है।
निगम ते अगम सुगम करि जान्यो तुम,
निरगुन ब्रह्म सोई सगुन के भेष है॥

* * *

सोई स्याम सुनहु अगाध कै समाधि ध्यावैं,
सोई स्याम रैनि जामैं नित ही समाति है।
सोई स्याम पलक लगें तें स्यामताई ही मैं,
तनमय होत तब कत पछताति है॥
'आलम' सुकवि कहै सोई स्याम बन घन,
तारनु तें न्यारे नहीं कत बिललाति है।
तुम ही मैं स्याम तुम स्याम ही मैं रमि रही,
बादि ही बिकल बिहवल भई जाति है॥

* * *

कर्म को बियापी को है धर्म कै समाधि ध्यावै,
श्रमु के सुनावै सु तौ ब्रह्म ही के नाम को।
कैसो जोग जुगति संजोग कैसो कहा जोग,
ज्ञान हू की गांठि कैसी ध्यानन को धाम को॥
'आलम' सुकवि इहां बृन्दावनचन्द कान्ह,
चित ये चकोर कहौ आन बिसराम को।
जहाँ रस परस सरस मुरली की घोर,
तहाँ ऊधौ सगुन निगुन कौन काम को॥

* * *

रुचिर बरन चीरु चंदन चरचि सुचि,
सरदु को चन्द चाहि चितहिं धरत हैं।
विविध विलास बसि रास ब्रजपति प्यारे,
तेई ब्रज बतियाँ उचित उचरत हैं॥
'आलम' सुकवि अब वैसे कान्ह ऐसे भये,
उतहि लुभाने किधौं इतही ढरत हैं।
मधुवन बसत मधुर मुरली की धुन,
मधुप कबहुँ माधौ सुरति करत हैं॥

*   *   *

पतियाँ पठाये अस्रुपात तौ भले पै होत,
बतियनि बिरह बितैबो कछू हाँसी है।
'आलम' निरास बैन सुने कौन जोरै नैन,
हियो को कठिन ऐसो कौन ब्रजबासी है॥
ऊधो ये सँदेसे जैये वाही चितचोर पै लै,
आपुन कठिन भये और को बिसासी है।
यहाँ लौ न आवै नैकु बाँसुरी सुनावै आनि,
बिनसैगो कहा आये जो पै अविनासी है॥

*   *   *

अँखियाँ भली जू ऐसे अँसुवनि धारैं, नातो
धारा पल छूटे तिहूँ देस न समाति है।
औधि है जु धूम की उसाँस रूँधि राखी है सु,
नेकु लेत द्यौसहू अँध्यारी होति राति है॥
'आलम' संताप स्वेद सींचिबो अधार कौ हूँ,
भूरी ह्वै के देह फिर खेह ज्यों उड़ाति है।
छाती पै सराहौं बरु दीया की सी भाँति ऊधौ,
पाती लिखे लेखनी ज्यों बाती बरी जाति है॥

* * *

तरनिजा तट बंसीवट कुंज पुंज बीथी,
बन घन जहाँ तहाँ आनँदुपयोगी हैं।
सोई रहे ध्यान ऊधौ ज्ञान को न काज कीजै,
ये तो ब्रजवासी ब्रजराज के वियोगी हैं॥
'आलम' सुकवि कहै तन बीच कान्ह छवि,
जोग दैन आये तुम कहा हम जोगी हैं।
जोग तौ सिखैये ताहि जोग की जुगति जानै,
जोग को न काज हम बंसी रस भोगी हैं॥

* * *

चाहती सिंगार तिन्हैं सिंगी सो सगाई कहा,
औधि की है आस तौ अधारी कैसे गहिये।
विरह अगाध तहाँ सुन्नि की समाधि कौन,
जोग काहि भावै जु वियोग दाह दहिये॥
'सेख' कहै मैन-मुद्रा मोहन जू लाये बन,
मुद्रा लाओ काननि सुने ई सूल सहिये।
लागै लग नेकहूँ कहूँ जो वैरी नीरो होय,
ऊधो एते बीच की विचारि बात कहिये॥

* * *

गाँसी जाहि सूल ताहि हाँसी न हँसाये आवै,
पासी परै पेम सुनि साँसी कहियत है।
मन गये मानस मरूरैं मारि साँस लेत,
परगट नैसकु उदासी कहियतु है॥
'सेख' कहै सोइ गति हरि बिछुरत ऊधौ,
वावरे विकल ब्रजवासी कहियतु है।
सुर बाँसी बेधत बिसारे सर व्याधि सोई,
तातैं बड़ो बधिक बिसासी कहियतु है॥

* * *

बारै तें न पलक लगत बिनु साँवरे ते,
बावरे अजान ऊधो भले उपदेस हैं।
ता दिन ते बन सूनो घरु है दहत दूनो,
तारनि में ज्योति नहीं जटा भये केस हैं॥
'आलम' बिहात छिन जानो जात कोटि दिन,
कौन रैन की समाई सुरति न नैस हैं।
हम हू ते स्याम दूरि स्याम हू ते हम दूरि,
वै तो आछे काछे स्याम सखि मैले भेस हैं॥

* * *

बूझि कै अबूझ ऊधौ होत ऐसी बूझियैरे,
जो पै ऐसी बूझ तौ अबूझ किन बूझै जू।
झखत झुरत झखकेतऊ खिझावै झुकि,
तुम झुकवत झूठो जूझ कौन जूझै जू॥
राजिव नयन मेरे 'आलम' रहे कै ध्यान,
रीझ की रहनि में अबूझ कहा रूझै जू।
प्रगटि जुगति जाहि जीजियतु ऐसी सुनि,
भोग की भुगति पायें जोग काहि सूझै जू॥

* * *

सीत रिपु भीत भई छाती राती ताती तई,
ऐसे ताप, तिय तन तये हैं न तवैंगे।
'आलम' अनिल इतराय कै कलिन मिलि,
दीन्हों है कलेस सुधि आये दूनो दवैंगे॥
ग्रीषम ते ऊषम है विषम अषाढ़ ऊधौ,
माधौ जो न आये मन भ्रमर ज्यों भवैंगे।
बधिवे को बूंदनि बियोगिनी को बीनि बीनि,
आये वैरी बादर बिसासी बिस बवैंगे॥

* * *

जमुना-कुंज

अरबिंद पुंज गुंज डोर भौंर ही ब्रती,
हलोर ओर थोर ज्यों निसा चलत चंदनी।
निकुंज फूल मौल बेलि छत्र छाँह से धरे,
तटी कलोल कोक पुंज सोक संक दंदनी॥
'आलम' कबित्त चित्त रास के विलास ते,
प्रकास वंदना करी बिलोकि बिस्व-बंदनी।
समीर मंद मंद केलि कंद दोष दंद यो,
अनंद नंदनंद के बिराजे हंसनंदनी॥

* * *

लता प्रसून डोल बोल कोकिला अलाप केकि,
लोल कोक कंठ त्यों प्रचंड भृंग गुंज की।
समीर बास रास रंग रास के बिलास बास,
पास हंसनन्दिनी हिलोर केलि पुञ्ज की॥
'आलम' रसाल बन गान ताल काल सो,
बिहंग वाय वेगि चालि चित्त लाज लुंज की।
सदा बसंत हंत सोक ओक देव लोक ते,
विलोकि रीझि रही पाँति भाँति सों निकुंज की॥

* * *

गंगा-वर्णन

जौहीं भौंह भीजी आँखि ताकि है जु तीजिये से,
जीवी कहे ज्याइहै अमर पद आइ लै।
अंबर पखारे ते दिगंबर बनैहै तोहि,
छलक छुआये गज छाल तन छाइ लै॥
'सेख' कहै आपी कोऊ जैनी है कि जापी बड़ो,
पापी है तो नीर पैठि नागन लबाय लै।
अंग बोरि गंग में निहंग ह्वै कै बेगि चलि,
आगे आउ मैल धोइ बैल गैल लाइ लै॥

* * *

नीके न्हाइ धोइ धूरि पैठो नेकु बैठो आनि,
धूरि जटि गई धूरिजटी लौं भवन में।
पैन्हि पैठो अंबर सु निकस्यो दिगम्बर ह्वै,
दृग देखो भाल में अचम्भो लाग्यो मन में॥
जैसो हर हिमकर धरे औ गरे गरल,
भारी घरु डरु वरु छांड़्यो एक खन में।
देखे दुति ना परत पाप रेते पा परत,
सापरे ते सुरसरि साँप रेंगे तन्न में॥

* * *

शिव को कवित्त

गोरख सुढौरी लिये संभु ताको मत दिये,
आपुन अकेलो संग गौरी तिहि लोग ना।
वरुनी विभूति बार बार लै लै मुख लावे,
उरहू लगावै पुनि भावै कछू भोग ना॥
अधारी लै धौरे धरी संपति धतूरा भरी,
वृषभ लै चलै जाय कोऊ ताको सोग ना।
जटा छिटकाये छबि छोनी में बिछाये छाल,
बासुकी बिरागी वाकी टेक बैठो जोग ना॥

* * *

देवी को कवित्त

भौन के दरस पुन्य-भौन मेरे नेरे आयो,
छत्र-छाँह परसत छत्रनि सों छयो हौं।
मंगला के मंगल तें मंगल अनेग भये,
हिंगलाज राखी लाज याहि काज नयो हौं ॥
सेषमति 'सेख' ही सुसेष की सी दीनी तुम,
रावरे सिखाये सिख ढिग आनि लयो हौं।
दुर्गा देवी तेरे इ दया ते दुर्ग नाँघि आयों,
पारबती तुम्हैं सुमिरत पार भयो हौं ॥

* * *

कृष्ण बाल-लीला वर्णन

पालन खेलत नन्द ललन छलन बलि,
गोद लै लै ललना करति मोद गान हैं।
'आलम' सुकवि पल पल मैया पावै सुख,
पोषति पीयूष सु करत पय पान हैं ॥
नन्द सों कहत नन्द रानी हो महर ! सत-
चन्द की सी कलनि बढ़त मेरे जान हैं।
आह देख आनँद सो प्यारे कान्ह आनन में,
आन दिन आन घरी आन छबि आन हैं ॥

* * *

देहौं दधि मधुर धरनि धर्‍यो छोरि खैहैं,
धाम ते निकसि धौरी धेनु धाइ खोलि हैं।
धौरि लौटि ऐहैं लपटै हैं लटकत ऐहैं,
सुखद सुनैहैं वैन वतियाँ अमोलि हैं॥
'आलम' सुकवि मेरे लालन चलन सीखैं,
बलन की बाँह ब्रज गलिनि में डोलि हैं।
सुदिन सुदिन दिन ता दिन गिनैगी माई,
जा दिन कन्हैया मोसों मैया कहि बोलि हैं॥

*　　*　　*

३

महाकवि केशव

जीवन-परिचय

केशवदास सनाढ्य ब्राह्मण थे। आपका जीवन काल संवत् १६१२ से १६७४ तक माना जाता है। ओड़छा-नरेश महाराजा रामसिंह के भाई इंद्रजीतसिंह इनका विशेष आदर करते थे। कहते हैं कि इन्होंने उसका एक करोड़ रुपया जुरमाना वीरबल द्वारा अकबर से माफ़ करा दिया था। कथा इस प्रकार है—

ओड़छा-नरेश इन्द्रजीतसिंह के यहाँ संगीत का अखाड़ा था। उनके यहाँ छः वेश्याएँ थीं, जिनमें राय प्रवीन प्रधान थी। प्रवीन इन्द्रजीत की प्रेमिका थी। वेश्या होने पर भी वह पतिव्रता थी। अकबर ने उसके रूप-लावण्य का वर्णन सुन उसे अपने यहाँ आने के लिए बुलावा भेजा। उस समय प्रवीन ने इन्द्रजीत की सभा में जाकर यह कवित्त पढ़ा—

आई हौं बूझन मन्त्र तुम्हें निज,
सासन सों सिगरी मति गोई।

देह तजौं कि तजौं कुल-कानि,
हिये न लजौं लजिहैं सब कोई ॥
स्वारथ औ परमारथ को गथ,
चित्त विचार कहौ अब सोई।
जामैं रहै प्रभु की प्रभुता अरु,
मेरो पतिव्रत भंग न होई॥

इस बात पर इन्द्रजीत ने उसे अकबर के यहाँ न भेजा। तब अकबर ने क्रोध में आकर उन पर एक करोड़ रुपया जुरमाना कर दिया। उसे माफ़ कराने के लिए केशवदास जी आगरा आये और महाराज वीरबल से मिलने के लिये उनके घर गये। वीरबल भीतर थे। उन्होंने कहला भेजा कि मेरे पेट में अजीर्ण हो गया है, बाहर नहीं आ सकता, फिर आना। केशव ने उत्तर सुनकर यह दोहा लिख भेजा :—

जस जारथो सब जगत कौ, भयो अजीरन तोय।
अपजस की गोली दऊँ, तत्कालहि सुधि होय॥

इसको पढ़ते ही वीरबल बाहर निकल आये और केशव ने उनको देखते ही यह सवैया पढ़ा—

पावक पंछी पसू नर नाग नदी नद लोक रचे दस चारी।
केशव देव अदेव रचे नरदेव रचे रचना न निवारी॥
कै बर बीरबली बर को सु भयो कृत कृत्य महाव्रतधारी।
दै करतापन आपन ताहि दियो करतार दुवो करतारी॥

इस छन्द को सुनकर राजा वीरबल इतने प्रसन्न हुए कि

उन्होंने छः लाख दाम की हुण्डियाँ, जो उनके दुशाले के कोने में बँधी थीं, खोलकर उसी समय केशव जी को दे दीं। इसके धन्यवाद में केशव ने यह छंद पढ़ा—

केशवदास के भाल लिख्यौ विधि रंक को अंक बनाय सँवारथौ।
धोये धुवै नहिं छूटो छुटै बहु तीरथ जायकै नीर पखारथौ॥
ह्वै गयो रंक ते राव तबै जब वीरबली नृपनाथ निहारथो।
भूलि गयो जग की रचना चतुरानन बाय रह्यो मुस चारथो॥

तब वीरबल ने अति प्रसन्न होकर फिर कहा—जो माँगना हो, सो माँगो।

केशव ने दो बातें माँगी—एक बादशाह से कहकर इन्द्रजीत का जुरमाना माफ़ कराया जाय और दूसरा दरबार में बेरोक-टोक आने की आज्ञा मिले। वीरबल ने दोनों ही बातें प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लीं। और बादशाह अकबर से कहकर इन्द्रजीतसिंह का जुरमाना माफ़ करा दिया। तब से केशवदास का आदर इन्द्रजीत के दरबार में और भी बढ़ गया।

आप रसिक भी बहुत थे। कहते हैं कि वृद्धावस्था में एक बार एक कूएँ पर खड़ी कुछ नवयुवतियों ने इन्हें 'बाबा' शब्द से संबोधन किया। तब इन्होंने निम्नलिखित दोहा कहा—

केशव केसन अस करी, जस अरि हूँ न कराहिं।
चन्द्रवदनी मृगलोचनी, बाबा कहि कहि जाहिं॥

इनके ग्रंथों में रामचन्द्रिका, कविप्रिया, रसिकप्रिया, विज्ञान-गीता और वीरसिंहदेवचरित्र मुख्य हैं। अंतिम ग्रंथ की साहित्यिक प्रौढ़ता उच्च कोटि की नहीं है। रसिकप्रिया में रसों का वर्णन है। यह ग्रंथ उच्च शैली का है। कविप्रिया एक उत्कृष्ट रीति ग्रंथ है। हिन्दी में पहला यही भारी रीति ग्रंथ है, जिससे केशव को आचार्य की पदवी मिली। इसमें गुण, दोष, कविता की जाँच, अलंकार, बारा-मासा, नख-शिख और चित्र काव्य के वर्णन हैं। रामचन्द्रिका में रावण वध पर्यंत इधर, तथा लवकुशी में उधर, साहित्य उत्कृष्ट है, किन्तु शेष ग्रंथ तादृश रोचक नहीं।

केशवदास की भाषा संस्कृत और कुछ बुन्देलखण्डी शब्द धारण किये हुए व्रजभाषा है। छंद आप शीघ्रता से बदलते जाते हैं, जिससे कथा में अरोचकता नहीं आने पाती। रचना में श्रेष्ठ छन्दों का बाहुल्य है। आप सर्वव्यापिनी दृष्टि के कवि थे। संस्कृत शब्द एवं भाव मिश्रित होने से आपकी रचना कुछ कठिन होती थी। उसमें कहीं २ श्रुतिकटु शब्द भी आ जाते थे। आप श्रुतिकटु का विचार शब्दों में न करके केवल अर्थ में करते थे। विविध छन्दों में कथाप्रणाली की रीति आप ही ने रामचन्द्रिका द्वारा चलाई। आपकी रचना का मान प्राचीन काल से होता आया है। 'सूर सूर तुलसी शशी, उडुगन केशवदास' का कथन इनके विषय में है। रामचन्द्रिका ग्रंथ भाषा काव्य का शृङ्गार है। भाषा-साहित्य में तुलसी-कृत रामायण के सिवा और कोई ऐसा रोचक ग्रन्थ नहीं है।

केशवदास सदैव महाराजों में रहे। अतः इन्होंने बड़े

आदमियों की बातचीत और उनके समाज-सामान का बहुत ही ठीक वर्णन किया है।

कहने का तात्पर्य यह है कि केशवदास महाकवि थे। इनकी कोई कोई कविता अन्य कवियों की कविता के सदृश, सुनते ही समझ में नहीं आ जाती। उसके लिए कुछ विचार की आवश्यकता पड़ती है। परंतु जितना ही उस पर अधिक विचार करें, उतना ही मिठास भी अधिक बढ़ती जाती है।

लंका-दहन

जटी अग्नि-ज्वाला अटा स्वेत हैं यों ;
शरत्काल के मेघ संध्यासमै ज्यों ।

लगी ज्वाल-धूमावली नील राजैं ;
मनो स्वर्न की किंकिनी नाग साजैं ।

लसैं पीत छत्री मढ़ी ज्वाल मानौ ;
ढके ओढ़नी लंक बच्छोज जानौ ।

जरैं जूह-नारी चढ़ी चित्रसारी ;
मनो चेटका मैं सती सत्त्वधारी ।

कहूँ रैनिचारी गहे ज्योति गाढ़े ;
मनो ईष-रोषाग्नि में काम डाढ़े ।

कहूँ कामिनी ज्वाल-मालानि भोरैं ;
तजैं लाल सारी अलंकार तोरैं ।

कहूँ भौन-राते रचे धूम छाहीं ;
ससी सूर मानो लसे मेघ माहीं ।

जरैं सस्त्रसाला मिली गंधमाला ;
मलै अद्रि मानो लगी दाव ज्वाला ।

चली भागि चौहूँ दिसा राजधानी ;
मिली ज्वाल माला फिरैं दुखहानी ।

मनो ईस बानावली लाल लोलैं ;
सबै दैत्य जायान के संग डोलैं ।

लंक लगाइ दई हनुमान विमान बचे अति उच्चरुखी ह्वै ;
पाचि फटैं उचटैं बहुधा मनि, रानी रटैं बहु पानी दुखी ह्वै ।
कंचन को पघिल्यो पुर पूर, पयोनिधि में पसरेति सुखी ह्वै ;
गंग हजार मुखी गुनि 'केसौ' गिरा मिलि मानो अपार मुखी ह्वै ॥

कहूँ किन्नरी किंगरी लै बजावैं;
सुरी, आसुरी बाँसुरी गीत गावैं ।
कहूँ जच्छिनी पच्छिनी लै पढ़ावैं;
नगी कन्यका पन्नगी को नचावैं ॥

पियैं एक हाला, गुहैं एक माला;
बनी एक बाला नचैं चित्रसाला ।
कहूँ कोकिला कोक की कारिका को;
पढ़ावैं सुआ लै सुकी सारिका को ॥

फिरयो देखिकै राजा साला सभा को;
　　रह्यो रीझि कै वाटिका की प्रभा को।
फिरौ वीर चौहूँ चितै सुद्ध गीता;
　　विलोकी भली सिंसुपा-मूल सीता ॥

हिमांसु सूर-सो लगै सु बात वज्र-सी बहै;
　　दिसा लगै कृसानु ज्यों विलेप अंग को दहै।
विसेष कालराति-सी कराल राति मानिये;
　　वियोग सील को न काल लोकहार जानिये ॥

पतिनी पति विनु दीन अति, पति पतिनी विनु मंद।
चन्द विना ज्यों जामिनी, ज्यों बिन जामिनी चन्द ॥

सवस्त्रा सबै अंग सिंगार सोहैं;
विलोके रमा, देव, देवी विमोहैं।

पिता-अंक ज्यों कन्यका सुभ्र गीता;
लसै अग्नि के अंक त्यों सुद्ध सीता।

महादेव की नेत्र की पुत्रिका सी;
कि संग्राम की भूमि मैं चंडिका सी।

मनो रत्न-सिंहासनस्था सची है;
किधौं रागिनी राग पूरे रची है।

गिरा पूर में है पयो-देवता-सी;
किधौं कंज की मंजु सोभा प्रकासी।

किधौं पद्म ही में सिफाकंद सोहै ;
किधौं पद्म के कोस पद्मा विमोहै ।

कि सिंदूर-सैलाग्र मैं सिद्ध-कन्या ;
किधौं पद्मिनी सूर संजुक्त धन्या ।

सरोजासना है मनौ चारु बानी ;
जपापुष्प के बीच बैठी भवानी ।

मनौ ओषधी-वृन्द में रोहिनी सी ;
कि दिग्दाह मैं देखिए जोगिनी सी ।

धरा-पुत्र ज्यों स्वर्नमाला प्रकासै ;
मनो ज्योति सी तच्छका भोग भासै ।

आसावरी मानिक-कुंभ सोभै,
असोक-लग्ना वन-देवता सी ।
पालास-माला-कुसुमालि मध्ये,
वसंत-लक्ष्मी सुभ-लच्छना-सी ॥

आरक्त-पत्रा सुभ चित्र-पुत्री,
मनौ विराजै अति चारु बेखा ।
संपूर्न सिंदूर-प्रभास कैधौं,
गनेस-भाल-स्थल चन्द्र रेखा ॥

फुटकर पद्य

भूषण सकल घनसारही के घनश्याम,
कुसुम कलित केशर ही छवि छाई सी।
मोतिन की लरी सिर कंठ कंठ माल हार,
और रूप ज्योति जात हेरत हेराई सी॥
चन्दन चढ़ाये चारु सुन्दर शरीर सब,
राखी जनु सुभ्र सोभा बसन बनाई सी।
सारदा सी देखियतु देखो जाइ 'केशोराइ',
ठाढ़ी वह कुँवरि जुन्हाइ में अन्हाइ सी॥

सवैया

पंडित पुत्र, सुधी पतिनी जु पतिव्रत प्रेम परायन भारी।
जानै सबै गुण, मानै सबै जग, दान विधान दया उर धारी॥
'केशव' रोगन ही सो वियोग, संयोग सुभोगन सो सुखकारी।
साँच कहे, जग माँह लहे यश, मुक्ति यहै चहुँ वेद विचारी॥

*　　*　　*

पातक हानि पिता सँग हारिबो गर्व के शूलन ते डरिये जू।
तालनि को बँधिबो वधरोर को नाथ के साथ चिता जरिये जू॥
पत्र फटैं ते कटे रिन 'केसव' कैसेहु तीरथ में मरिये जू।
नीकि लगै ससुरारि की गारि औ डाँड़ भलो जो गया भरिये जू॥

*　　*　　*

वाहन कुचाली, चोर चाकर, चपल चित,
मित्र मतिहीन, सूम स्वामी उर आनिये।
परवश भोजन, निवास वास कुकुरन,
बरषा प्रवास, 'केशोदास' दुखदानी ये ॥
पापिन के अंग संग, अंगना अनंगवश,
अपयश युत सुत चित हित हानि ये।
मूढ़ता, बुढ़ाई, ब्याधि, दारिद, झुठाई, आधि,
यहई नरक नरलोकनि बखानिये ॥

* * *

छप्पय

धिक मंगन बिन गुणहिं, गुण सु धिक सुनत न रीझिय।
रीझ सु धिक बिन मौज, मौज धिक देत सु खीझिय ॥
दीबो धिक बिन साँच, साँच धिक धर्म न भावै।
धर्म सु धिक बिन दया, दया धिक अरि कहँ आवै ॥
अरि धिक चित्त न सालई, चित धिक जहँ न उदार मति।
मति धिक 'केशव' ज्ञान बिनु, ज्ञान सु धिक बिनु हरि भगति ॥

* * *

सवैया

पाप की सिद्धि सदा ऋण वृद्धि सुकीरति आपनी आप कही की।
दुःख को दान जु सूतक न्हान जु दासी की संतति संतत फीकी॥
बेटी को भोजन भूषण राँड़ को 'केशव' प्रीति दसा पर ती की।
युद्ध में लाज दया अरि को अरु ब्राह्मण जाति सो जीति न नीकी॥

* * *

कवित्त

लूटिबे के नाते पाप पट्टनै तौ लूटियत,
तोरिबे को मोह तरु तोरि डारियतु है।
घालिबे के नाते गर्व घालियत देवन के,
जारिबे के नाते अघ ओघ जारियतु है॥
बाँधिबे के नाते ताल बाँधियत 'केशोदास'
मारिबे के नाते तौ दरिद्र मारियतु है।
राजा रामचन्द्र जू के नाम जग जीतियतु
हारिबे के नाते आन जन्म हारियतु है॥

* * *

इन्द्रजीत वर्णन

गुन मनि आगररु धीरज को सागर,
उजागर धवलधर धर्मधुर धाये जू।
खल तरु तोरिबे को राजै गजराज सम,
अरि गजराजनि को सिंह सम गाये जू॥
वामिन को वाम देव कामिन को कामदेव,
रन जय थंभ रामदेव मन भाये जू।
काशीकुल कलश सुवृद्ध जंबूदीप दीप,
'केशवदास' कल्पतरु इन्द्रजीत आये जू॥

* * *

बानी ज्यों गँभीर मेघ सुनत सखा शिखीन,
सुख अरि उरनि जवासे ज्यों जरत हैं।
जाके भुजदण्ड भुजलोक के अभय ध्वज,
देखि देखि दुर्ज्जन भुजंग ज्यों डरत हैं॥
तोरिबे को गढ़ तरु होत हैं शिला स्वरूप,
राखिबे को द्वारनि किवाँर ज्यों अरत हैं।
भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत जीवै जुग जुग,
जाके राज 'केशवदास' राज सा करत हैं॥

* * *

राम-वर्णन

कीन्हे छत्र छितिपति 'केशोदास' गणपति,
दसन बसन बसुमति कह्यो चारु है।
विधि कीन्हो आसन शरासन असम शर,
आसन को कीन्हो पाकशासन तुषारु है॥
हरि कीन्ही सेज हरि प्रिया कियो नाकमोती,
हर कीन्हो तिलक हराहू कियो हारु है।
राजा दशरथ-सुत सुनो राजा रामचन्द्र,
रावरो सुयश सब जग को श्रृंगारु है॥

* * *

दह द्युति हलधर कीन्ही निशिकर कर,
जगकर बानी वर विमल विचारु है।
मुनिगन मनमानि द्विजन जनेऊ जानि,
कर शंख शंखपानि सुखद अपारु है॥
'केशोदास' सविलास विलसै विलासनीनि,
सुख मुख मृदुहास उदित उदारु है।
राजा दशरथ-सुत सुनौ राजा रामचन्द्र,
रावरो सुयश सब जग को श्रृंगारु है॥

* * *

नारायण कीन्ही मनि उर अवदात गनि,
कमला की बानी भनि शोभा शुभ सारु है।
'केशव' सुरभि केश शारदा सुदेश वेश,
नारद को उपदेश विशद विचारु है॥
शौनक ऋषीविशेखि शीरष शिखानि लेखि,
गंगा की तरंग देखि विमल विहारु है॥
राजा दशरथ-सुत सुनो राजा रामचन्द्र,
रावरो सुयश सब जग को श्रृंगारु है॥

* * *

जरावर्णन

विलोकि शिरोरुह श्वेत समेत तनोरुह 'केशव' यों गुण गायो।
उठे किधौं आयु कि औधि के अंकुर शूल कि सुःख समूल नशायो॥
लिख्यो किधौं रूप के पाणि पराजय रूप को भूप कुरूप लिखायो।
जरा शर पंजर जीव जर्यो कि जरा जरकंबर सो पहिरायो॥

* * *

अभिराम सचिक्कन श्याम सुगंधहु धामहुते जे सुभाइक के।
प्रतिकूल सबै दृगशूल भये किधौं शाल श्रृंगार के धाइक के॥

निजदूत अभूत जरा के किधौं अविताली जरा जनलाइक के।
सितकेश हिये यहि वेश लसै जनु साइक अंतक नाइक के॥

*　　*　　*

लसैं सित केश शरीर सबै कि जरा जस रूपे के पानी लिखायो।
सुरूप को देश उदात कै कीलनि कीलतु कै कै कुरूप नसायो॥
जरैं किधौं 'केशव' व्याधिनि की किधौं ओपि के अंकुर अंत न पायो
जरा शर पंजर जीव जरयो कि जरा जरकंबर सो पहिरायो॥

*　　*　　*

संपूर्ण वर्णन

हरिकर मंडन सकल दुख खंडन,
मुकुर महिमंडल के कहत अखंड मति।
परम सुवास पुनि पीयुष निवास, परि-
पूरण प्रकाश 'केशोदास' भू अकासगति॥
वदन मदन कैसो श्री जू के सदन शुभ,
सोदर शुभोदर दिनेशजू के मित्र अति।
सीता जी के मुख सुखमा के उपमा को सखि,
कोमल कमल नहिं अमल रजनि पति॥

*　　*　　*

मंडल वर्णन

मणिमय आलवाल थलज जलज रवि-
मंडल में जैसे मति मोहै कवितानि की।
जैसे सविशेष परिवेष में अशेष रेख,
शोभित सुवेष सोम सीमा सुखदानि की ॥
जैसे बंक लोचन कलित कर कंकणनि,
वलित ललित द्युति प्रकट प्रभानि की।
'केशोदास' तैसे राजै रास में रसिकराइ,
आस पास मंडली विराजै गोपिकान की ॥

* * *

संग्राम वर्णन

शोणित सलिल नर वानर सलिल चर,
गिरि हनुमन्त विष विभीषण डारयो है।
चँवर पताका बड़ी बाड़वा अनल सम,
रोग रिपु जामवन्त 'केशव' विचारयो है ॥
वाजि सुरवाजि सुरगज से अनेक गज,
भरत सबन्धु इन्दु अमृत निहारयो है।
सोहत सहित शेष रामचन्द्र कुश लव,
जीतिकै समर सिंधु साँचेहू सुधारयो है ॥

* * *

४

महाकवि भक्त रसखान

जीवन-परिचय

रसखान जाति के मुसलमान थे और किसी कारण अंत में हिंदू धर्म के अनुयायी हो गये थे। इनके जन्म तथा मरण की तिथियाँ अभी तक निश्चित रूप से जानी नहीं जा सकी हैं। किंतु इनकी पुस्तक 'प्रेमवाटिका' के निम्नलिखित दोहे से यह अवश्य पता चलता है कि उनका समय विक्रम की १७ वीं शताब्दी के लगभग है। जैसे—

विधु सागर रस इन्दु सुभ, बरस सरस रसखानि।
प्रेमवाटिका रचि रुचिर, चिर हिय हरख बखानि॥

अर्थात् प्रेमवाटिका की रचना सं० १६७१ में की गई थी। इस पुस्तक में निम्नाङ्कित दोहों—

'देखि गदर दिन साहबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा-बंस की, ठसक छोरि रसखान॥
प्रेम निकेतन श्री बनहिं आइ गोबरधन धाम।
लह्यो सरन चित चाहि कै, जुगल सरूप ललाम॥

तोरि मानिनी में हियो, मोरि मोहिनी मान।
प्रेम देव की छविहिं लखि, भये मियाँ रसखान ॥'

से यह भी विदित होता है कि ये दिल्ली-निवासी किसी राजवंश में उत्पन्न हुए थे और युवावस्था में अपनी प्रेमिका पर पूर्ण रूप से आसक्त भी थे। करुणार्द्र हृदय होने के कारण, जब दिल्ली की दुर्गति इनसे नहीं देखी गई तब उन्होंने अपनी उच्च कुल-सुलभ विलास-प्रियता को तिलाञ्जलि दे दी, एवं साथ ही राजधानी का भी परित्याग कर दिया। ऐसा करते समय अपनी प्रियतमा को छोड़ने का पश्चात्ताप इन्हें कुछ दिनों तक अवश्य रहा होगा। परन्तु प्रेम की धुन में घूमते टहलते जब ये वृन्दावन तथा गोवर्धन गिरि के निकट पहुँचे और वहां अशेष सौंदर्य-संपन्न श्री राधा-माधव की युगल मूर्ति के दिव्य दर्शन किये, तब उनका प्रिया-परित्याग का भी मोह जाता रहा। फिर तो वे श्रीकृष्ण की शरण में रहकर अनन्य भक्त रसखान ही हो गये। इन्होंने 'सुजान रसखान' नामक अपनी पुस्तक में एक स्थान पर यह भी लिखा है कि देश तथा विदेश के बहुत से नरेशों को देखा। उनके रीझने या खीझने से मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ सकता और न वे मेरी कसक ही मिटा सकते हैं। 'बस, लाड़लो छैल वही तो अहीर को, पीर हमारे हिये की हरैगो' (पद्य १०५, पृष्ठ ३२)। परन्तु इतने से ही यह निश्चित नहीं हो सकता कि रसखान भी कभी अपने समसामयिक कवियों की भाँति किसी रजवाड़े की छत्र-छाया में रह चुके थे। अस्तु!

रसखान की पुस्तकों को देखने से पता चलता है कि ये

वास्तव में एक प्रेमी जीव थे, जिन्हें विरक्ति ने लौकिक प्रेम-सरिता से बाहर निकालकर श्री भगवान् कृष्णचन्द्र के अलौकिक भक्ति-सागर में डाल दिया था। इनके प्रत्येक पद्य में प्रेममयी भक्ति का ही अनोखा रंग दीख पड़ता है। इस कारण, अपने समय के बहुत से अन्य भक्तों की भांति इन्हें अपने इष्टदेव की न तो कोई लंबी चौड़ी प्रशंसा करनी है और न मुक्ति अथवा वैकुण्ठवास की चाह में आत्मग्लानि से सने हुए विनय के पद ही निर्माण करने हैं। ये तो साधारण अहीर के घर खेल-कूद करने तथा वृन्दावन में गाय चराते समय विविध लीलाओं में सदा दत्तचित्त रहने वाले कृष्ण को निर्निमेष दृष्टि से ही केवल देखते रहना चाहते हैं। उनकी धारणा ह कि अनेक जन्मों तक भी यदि मैं उसे देखता रहूँ तो भी मेरे नयनों को तृप्ति नहीं मिल सकती।

रसखान, हिन्दुओं के धार्मिक ग्रंथों से भी बहुत कुछ परिचित थे। उन्होंने अपने 'सुजान रसखान' में एक एक पद्य गंगा तथा शिव की स्तुति में भी लिखा है। परंतु इनकी किसी भी पुस्तक में इसलाम धर्म का प्रभाव कदाचित् ही देखने को मिलेगा। ये साहित्य के मुख्य २ अंगों के जानकार ज्ञात होते हैं। कोरे शृंगार रस की कई एक कविताएँ भी इनके 'सुजान रसखान' नामक ग्रंथ में मिलती हैं। दो-चार स्थलों पर तो भाव कुछ अश्लीलता तक आ गये हैं किंतु यह सब कुछ होते हुए भी भक्त रसखान की कविता बड़ी ही मनोहारिणी है। इनके भाव अन्तस्तल से प्राकृतिक झरने की धारा के समान स्वभावतः निकलकर प्रवाहित हुए हैं और भाषा इनकी ऐसी मँजी

हुई है कि व्यर्थ के प्रयोगों का कहीं नाम तक नहीं। मुहावरे की अधिकता तथा दैनिक व्यवहारों के साधारण उल्लेख से रसखान की कविता में सब कहीं प्रसाद गुण के चमत्कार दीख पड़ते हैं।

"२५२ वैष्णवों की वार्त्ता" में लिखा है कि युवावस्था में ये एक बनिये के पुत्र पर आसक्त थे। रात दिन उसके साथ फिरा करते थे। यहाँ तक कि उसकी जूठ तक खाने में भी इन्हें संकोच न था। लोग इन पर हँसते थे परन्तु इन्हें किसी की परवाह न थी। एक बार चार वैष्णव परस्पर बातें कर रहे थे कि ईश्वर से ऐसा प्रेम करना चाहिये जैसा रसखान उस लड़के से करता है। इन्होंने सहसा सुन लिया और उनके पास जाकर कारण पूछा। वैष्णवों ने जब इन्हें कृष्ण का सौंदर्य बतलाया तो इन्होंने उस लड़के को तो छोड़ दिया और भगवान् श्रीकृष्ण से प्रेम करने लगे।

ग्वालन संग जैबो बन ऐबो सुगाइन संग,
हेरि तात गैयों हा हा नैन फरकत हैं।
ह्याँ के गज मोती माल वारौं गुञ्ज मालन पै,
कुञ्ज सुधि आये हाथ प्रान धरकत हैं॥
गोबर को गारो सुनौ मोहि लगै प्यारो कहा,
भये महल सोने को जटत मरकत हैं।
मंदर ते ऊँचे यह मन्दिर हैं द्वारिका के,
ब्रज के खिरक मेरो हिये खरकत हैं॥१॥

*   *   *

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर कौ तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवों निधि को सुख नन्द की गाइ चराइ बिसारौं॥

'रसखानि' कबौं इन आँखिन सों ब्रज को बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हूँ कलधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं ॥२॥

* * *

ब्रह्म मैं ढूँढ्यो पुरानन गानन, वेद रिचा सुन्यो चौगुनो चायन।
देख्यो सुन्यो कबहूँ न कितूँ,वह कैसो सरूप ओ कैसो सुभायन॥
टेरत हेरत हारि पर्‌यो 'रसखानि' बतायो न लोग लुगायन।
देखो दुरो वह कुञ्ज कुटीर में, बैठो पलोटत राधिका पायन ॥३॥

* * *

मानस हौं तो वही 'रसखानि' बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौं तो कहा बस मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धर्‌यो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं, नित कालिन्दी कूल कदंब की डारन॥४॥

* * *

उनहीं के सनेहन सानी रहैं, उनहीं के जु नेह दिवानी रहैं।
उनहीं की सुनैं न औ बैन त्यों सैन, सो चैन अनेकन ठानी रहैं॥
उनहीं संग डोलन में 'रसखानि', सबै सुख-सिंधु अघानी रहैं।
उनहीं बिन ज्यों जल-हीन ह्वै मीन सी, आँखि मेरी अँसुवानी रहैं॥५॥

* * *

प्राण वही जो रहैं रिझि वा पर, रूप वही जिहि वाहि रिझायो।
सीस वही जिनके परसे पद, अंक वही जिन वा परसायो॥
दूध वही जु दुहायो री वाहि, दही सु सही जु वही ढरकायो।
और कहाँ लौ कहौं 'रसखानि' री, भाव वही जु वही मन भायो॥६

*　*　*

पूरब पुन्यनि ते चितई जिन, ये अँखियाँ मुसकानि भरी जू।
कोउ रहीं पुतरी सी खरी कोउ घाट परी कोउ वाट परी जू॥
जे अपने घर ही 'रसखानि', कहै अ्रस हौंसनि जानि मरी जू।
लाल जे वाल विहाल करी, ते बिहाल करी न निहाल करी जू॥७

*　*　*

सोहत है चँदवा सिर मौर के, जैसिये सुन्दर पाग कसी है।
तैसिये गो रज भाल विराजति, जैसी हिये बनमाल लसी है॥
'रसखानि' विलोकत वैरि भई, दृग मूँदिकै ग्वालि पुकारि हँसी है।
खोलि री घूँघट, खोलौं कहा वह, मूरति नैननि माँझ वसी है॥८

*　*　*

धूर भरे अति सोभित स्याम जू, तैसी बनी सिर ऊपर चोटी।
खेलत खात फिरैं अँगना पग, पैजनि बाजति पीरी कछोटी॥

वा छवि को 'रसखान' विलोकत, वारत काम कला निज कोटी ।
काग के भाग बड़े सजनी, हरि हाथ सों ले गयो माखन रोटी ॥९॥

* * *

सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर ध्यावैं ।
जाहि अनादि अनंत अखण्ड, अछेद अभेद सुवेद बतावैं ॥
नारद से सुक व्यास रहैं, पचिहारि तऊ पुनि पार न पावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ॥१०॥

* * *

कौन ठगौरी भरी हरि आजु, बजाई है बाँसुरिया रँग भीनी ।
तान सुनी जिनहीं तिनहीं तबहीं तिन लाज बिदा करि दीनी ॥
घूमैं घड़ी घड़ी नन्द के द्वार नवीनी कहा कहा बाल प्रवीनी ।
या ब्रजमंडल में 'रसखानि' सु कौन बहू जो लटू नहिं कीनी ॥११॥

* * *

दूध दुह्यो सीरो पर्‍यो, ताको न जमायो कर्‍यो,
जामन दयो सो धर्‍यो धर्‍यो ही खटायगो ।
आन हाथ आन पाह सबहीं के तबहीं के,
जबहीं के 'रसखानि' कानन सुनाइगो ॥
ज्यौं ही नर त्यौं ही नारी तैसीये तरुन बारी,
कहिये कहा री सब ब्रज बिललाइगो ।

जानिये न आलि, यह छोहरा जसोमति को,
बाँसुरी बजाइगो कि विष बगराइगो ॥१२॥

*   *   *

मेरे सुभाय चितैबे को माइ री, लाल निहारि कै बंसी बजाई।
वा दिन ते मोहि लागि ठगौरी सी, लोग कहैं कोउ बावरी आई॥
यों 'रसखानि' घिरयो सिगरो ब्रज, जानत वे कि मेरो जियराई।
जो कोउ चाहै भलौ अपनौ तौ, सनेह न काहूसो कीजिए माई॥१३

*   *   *

दानी भये नये माँगत दान, सुनै जु पै कंस तो बंधन जैहो।
रोकत हौ बन में 'रसखानि', पसारत हाथ घनो दुख पैहो॥
टूटै छरा बछरादिक गोधन, जो धन है सो सबै धन दैहो।
जैहे जो भूषन काहू सखी को, मोल छला के लला न बिकैहो॥१४॥

*   *   *

काहू सो माई कहा कहिये, सहिये जू सोई 'रसखानि' सहावैं।
नेम कहा जब प्रेम कियो तब, नाचिये सोई जो नाच नचावैं॥
चाहत हैं हम और कहा सखि, क्यों हूँ कहूँ प्रिय देखन पावैं।
चेरिया सों जु गोपाल रच्यो तौ, चलो री सबै मिलि चेरि कहावैं॥

*   *   *

मोर पखा सिर ऊपर राखिहौं, गुंज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढ़ि पितम्बर लै लकुटी बन गोधन ग्वारिन संग फिरौंगी॥
भाव तो वोहि मेरो रसखानि सो तेरे कहे सब स्वाँग करौंगी।
या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरान धरौंगी॥१६॥

* * *

खञ्जन नैन फँदे पिंजरा छवि नाहिं रहै थिर कैसहूँ माई।
छूटि गई कुल-कानि सखी, रसखानि लखी मुसिकानि सुहाई॥
चित्र कढ़े से रहैं मेरे नैन न बैन कढ़े मुख दीनि दुहाई।
कैसी करौं जिन जाव अली, सब बोलि उठे यह बावरी आई॥१७॥

* * *

अति लोक की लाज समूह में घेरिकै, राखि थकी भव-संकट सों।
पल में कुल-कानि की मेंड़ नखी नहिं रोकि सको पलके पट सों॥
रसखानि सो केतो उचाटि रही उचटी न सँकोचकी औचटसों।
अलि कोटि कियो हटकी न रही अँटकी अखियाँ लटकी लट सों॥१८॥

* * *

कानन पै अंगुरी रहिबो जबहीं मुरली धुनि मंद बजैहै।
मोहनि तानन सों रसखानि, अटा चढ़ि गोधन गैहै तो गैहै॥
टेरि कहौं सिगरे ब्रज लोगनि, कालिह कोऊ कितनो समुझैहै।
माइ री वा मुख की मुसुकानि सम्हारी न जैहै न जैहै न जैहै॥१९॥

* * *

अबहीं गई खिरक गाय के दुहाइबे को,
बावरी ह्वै आई डारि दोहनि यो पाननि की।
कोऊ कहै छरी कोऊ भौन घटी डरी कोऊ,
कोऊ कहै मरी गति हरी अँखियानि की॥
सास व्रत ठानै नन्द बोलत सयानै धाइ,
दौरि-दौरि जानै मानौ खोरि देवतानि की।
सखी सब हँसैं मुरझानि पहिचानि कहूँ,
देखि मुसकानि वा अहीर रसखानि की॥२०॥

* * *

छूट्यो गेह-काज लोक-लाज मनमोहनी को,
छूट्यो मनमोहन को मुरली बजाइबो।
देखो दिन द्वै में रसखानि बात फैलि जैहै,
सजनी, कहाँ लौं चन्द हाथ न दुराइबो॥
कालिही कलिन्दी-तीर देख्यो मैं अचानक ही,
दोउन को दोउ मुरि मृदु मुसक्याइबो।
दोऊ परैं पैंयां दोऊ लेत हैं बलैयां,
उन्हें भूल गई गैयां, इन्हें गागर उठाइबो॥२१॥

५

महाकवि विद्यापति
मैथिलकोकिल

जीवन-परिचय

महाकवि विद्यापति ठाकुर मिथिलाप्रदेश के निवासी थे। बहुत दिनों तक लोग इन्हें बंगाली समझते रहे, परंतु अंत में बहुत छानबीन करने पर उनका यह विचार भ्रमात्मक निकला। इनका निवास-स्थान विसपी ग्राम था, जिसे गढ़विसपी भी कहते हैं। यह गाँव दरभंगा ज़िले में कमतौल स्टेशन से चार मील की दूरी पर है। इसमें इनके पूर्वज बहुत दिनों से रहते आये थे। इनकी वंशावली इस प्रकार है :—

त्रिपाठी कर्मादित्य ठक्कुर
|
देवादित्य सान्धिविग्रहिक

वीरेश्वर	गणेश्वर	जयदत्त
चण्डेश्वर	रामदत्त	गणपति ठक्कुर
		विद्यापति

इस वंश के प्रायः सभी लोग प्रकाण्ड विद्वान् थे। कोई २ इसके अतिरिक्त राजाओं के प्रतिष्ठित मंत्री भी थे।

विद्यापति जी को इनके पिता राजा गणेश्वर के दरबार में अपने साथ ले जाया करते थे। इनके गुरु पं० हरिमिश्र जी थे। इनका पाण्डित्य तथा इनकी कविता का लालित्य इनके जीवन काल में ही प्रसिद्ध हो गया था। २९३ ल०* संवत् में, जिस ताम्रपत्र द्वारा इनको विसपी ग्राम दान में मिला था, उसमें इनका उल्लेख "नव जयदेव महाराजपंडित" करके किया गया है। यह संस्कृत के अद्वितीय पंडित थे और संस्कृत तथा मैथिल भाषा में ग्रन्थ बनाने में अतीव पटु।

ऐसा जान पड़ता है कि इन्होंने अपनी अवस्था के अनुसार सब रसों का उपभोग किया था। यह वीरता और दानशीलता के बड़े प्रशंसक थे। यौवनावस्था में इनकी श्रृंगाररस की सूक्ष्म की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। वृद्धावस्था में इनको वैराग्य और भक्ति से लगन लग गई। विहार में किंवदन्ति प्रसिद्ध है कि जब इनकी मृत्यु का समय आया तो ये गंगा की ओर पालकी में चढ़ कर गये। गंगा से जब दो कोस की दूरी पर रह गये तो इन्होंने कहा कि जब मैं गंगा मैया के लिए इतनी दूर चलकर आया हूँ तो क्या वह मेरे लिए दो कोस भी चलकर न आयेगी! यह कह

---

* राजा लक्ष्मणसेन १११९ ईसवी में सिंहासन पर बैठे। तब से उनका संवत् प्रारम्भ होता है।

उन्होंने पालकी वहीं रखवा दी । कहते हैं कि गंगा स्वयं आकर उनके पास बहने लगी और इनको अपने अन्तस्तल में ले गई। इससे विद्यापति की दृढ़ भक्ति का परिचय मिलता है ।

विद्यापति के पदों में शृंगारी पद अधिक हैं । बंगाली वैष्णवों में इनका प्रचार बहुत अधिक रहा है । कहते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु इनके पदों को गाते २ तल्लीन हो जाते थे । इसी बात से कई लोग यह समझने लगते हैं कि विद्यापति वैष्णव थे, परन्तु यह उनकी भूल है । विद्यापति शैव थे । विसपी गाँव से उत्तर भेड़वा गाँव में एक बाणेश्वर महादेव का मंदिर है । कहते हैं कि विद्यापति इन्हीं महादेव की पूजा किया करते थे ।

विद्यापति ठक्कुर कोई ६० वर्ष तक जीवित रहे । इनकी पत्नी का स्पष्ट उल्लेख इनके किसी पद में नहीं मिलता । इनके हरिपति नाम का एक पुत्र तथा दुलही नाम की पुत्री थी । अपनी कन्या को संबोधित करके इन्होंने कई पद कहे हैं । इनकी पुत्रवधू का नाम चन्द्रकला था । चन्द्रकला जी के नाम की एक कविता लोचन-कवि-संगृहीत रागतरंगिणी में विद्यमान है ।

विद्यापति के परम मित्र, इनके गुरु के भतीजे श्री पक्षधर मिश्र थे । पक्षधर के विषय में एक बड़ी मनोरंजक कथा प्रसिद्ध है—

विद्यापति ने विसपी ग्राम में एक अतिथि-शाला खुलवा रक्खी थी । प्रत्येक अभ्यागत को भोजन करवाया जाता था । एक बार विद्यापति शाला में आकर पूछने लगे कि क्या सब को भोजन कराया गया ? सब ने कहा—हाँ । परन्तु कोने में एक दुर्बलकाय

ब्राह्मण देवता बैठे थे। उनको भोजन नहीं मिला था। विद्यापति ने जब पास जाकर देखा तो उनके मित्र पक्षधर निकले। अवहेलना का समाधान करते हुए विद्यापति बोले—

'प्राघुणो घुणवत् कोणे सूक्ष्मत्वान्नोपलक्षितः।'

अर्थात् 'अतिथि महाशय घुन के समान छोटे थे, इसलिये कोई देख न पाया।' इस पर पक्षधर तुरन्त बोल उठे—

'न हि स्थूलधियः पुंसः सूक्ष्मे दृष्टिः प्रजायते'॥

अर्थात् 'स्थूलबुद्धि पुरुष की दृष्टि सूक्ष्म वस्तु की ओर नहीं जाती।' जिस पर यह बहुत लज्जित हुए।

विद्यापति की संस्कृत और मैथिल की निम्नलिखित पुस्तकें प्राप्त हुई हैं—

कीर्तिलता, भूपरिक्रमा, पुरुषपरीक्षा, कीर्तिपताका, लिखनावली, विभागसार, वर्षक्रिया, गया पत्तल, शैव सर्वस्वसार, गंगावाक्यावली, दानवाक्यावली, दुर्गाभक्ति, तरंगिणी तथा पदावली।

कि कहव हे सखि आजुक बात, मानिक पड़ल कुबनिक हात।
काच काञ्चन न जानय मूल, गुञ्जा रतन करइ समतूल।
जे किछु कभु नहिं कला रस जान, नीर खीर दुहुँ करे समान।
तन्हि सो कहाँ पिरित रसाल, वानर कण्ठे कि मोतिय माल।
भनइ विद्यापति इह रस जान, वानर मुँह कि शोभय पान॥

* * *

हमर नागर रहल दूर देश, केऊ, नहिं कहि सक कुशल सँदेश
सो सखि काहि करव अपतोस, हमर अभागि पिया नहीं दोस
पिया बिसरल सखि पुरब पिरीति, जखन कथल बाम सब विपरी
मरम क वेदन मरमहि जान, आन क दुख आन नहिं जान
भनइ विद्यापति न पुरइ काम, कि करति नागरि जाहि विधि बाम

* * *

माधव कत तारे करब बड़ाइ।
उपमा तोहर हम ककरा कहब, कहितहुँ अधिक लजाइ॥

जौ श्रीखण्ड सौरभ अति दुर्लभ, तौ पुनि काठ कठोर।
जौ जगदीश निशाकर तौ पुन, इकहि पक्ष इजोर॥
मनि समान अओरि नहिं दूसर, तिन कहुँ पाथर नामे।
कनक कदलि छोट लजित मै रहु की कहु ठामहि टामे॥
तोहर सरिस एक तोह माधव, मन होइछ अनुमाने।
सज्जन जन सों नेह कठिन थिक कवि 'विद्यापति' भाने॥

*　　　*　　　*

सजनी अपद न मोहिं परबोध।
तोड़ि जोड़िअ जाहाँ गेंठे पए पड़ ताहाँ तेज तम परम विरोध॥
सलिल सनेह सहज थिक सीतल ई जानइ सबे कोइ।
से जदि तपत कए जतने जुड़ाइय, तइ अओ विरत रस होइ॥
गेल सहज हे कि रिति उपजाइअ कुल ससि नीली रंग।
अनुभवि पुनि अनुभवए अचेतन पड़ए हुतास पतंग॥

*　　　*　　　*

मधुपुर मोहन गेल रे मोरा बिहरति छाती।
गोपी सकल बिसरलनि रे जत छिल अहिवाती॥
सुतिल छलहुँ अपन गृह रे निन्दई गेलउ सपनाइ।
करसों छुटल परसमनि रे कोन गेल अपनाइ॥
कत कहवो कत सुमिरब रे हम भरिय गराणी।
आनक धन सों धनवन्ति रे कुबजा भेल राणी॥
गोकल चान चकोरल रे चोरी गेल चन्दा।

बिछुड़ि चललि दुहु जोड़ी रे जीव इह गेल धंदा॥
काक भाख निज भाखह रे, पहु आओत मोरा।
क्षीर खाँड़ भोजन देव रे भरि कनक कटोरा॥
भनहिं 'विद्यापति' गाओल रे धैरज धर नारी।
गोकल होयत सुहाओन फेरि मिलत मुरारी॥

* * *

सखि कि पुछसि अनुभव मोय।
से ही परित अनुराग बखानइत तिले तिले नूतन होइ॥
जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल।
सेहो मधुर बोल स्रवनहि सुनल स्रुति पथे परस न गेल॥
कत मधु जामिनअ रभसे गमाओल न बुझल कैसन केल।
लाख लाख जुग हिअ हिअ राखल तइओ हिआ जुड़न न गेल॥
कत विदग्ध जन रस अनुगमन अनुभव काहु न पेख।
'विद्यापति' कह प्राण जुड़ाइत लाखवे न मिलल एक॥

* * *

नन्दक नन्दन कदम्बेरि तरु तरे धिरे धिरे मुरली बजाव।
समय सँकेत निकेतन बइसल बेरि बेरि बोलि पठाव॥
सामरी तोरा लागि अनुखने विकल मुरारि।
जमुना का तिर उपवन उदवेगल फिरि फिरि ततहि निहार।
गोस बिके अबइते जाइते जनि जनि पुछ बनमारि॥

तो हे मतिमान सुमति मधुसूदन वचन सुनह किछु मोरा।
भनइ 'विद्यापति' सुन वर जौवति वन्दह नन्दकिशोरा॥

*   *   *

कीर्तिलता

पाइग्गह पअ भरें भउँ पल्लानि ञउँ तुरंग।
थप्प थप्प थन वार कइ, सुनि रोमञ्चिय अंग॥

णाराच छंद

अनेअ वाजि तेजि ताजि साजि साजि आनिञा।
परक्कमेहि जासु नाम दीप दीपे जानिआ॥
विसाल कंध चारु बंध सत्तिरूअ सोहणा।
तलप्प हाथि लाँघि जाथि सत्तु खेए खोहणा॥
समत्थ सूर ऊरपूर चारि पाञे चक्करें।
अनन्त जुज्झ मम्म वुज्झि सामि काज संगरे॥
सुजाति शुद्ध कोहे कुद्ध तोरि धाव कन्धरा।
विशुद्ध दापे मारटापे चूरि जा वसुन्धरा॥
विपप्ख केन मेन हेरि हिंसि हिंसि दाम से।
निसान सद्द भेरि संग खोणि खुन्द तास से॥
तजान भीत वात जीत चामरेहि मण्डिआ।
विचित्त चित्त नाच नित्त राग वाग पण्डिआ॥

*   *   *

एवञ्च

विछि वाछि तेजिताजि पष्खरेहि साजि साजि।
लष्ख संख आनु घोर जासु मूलें मेरु थोर॥

* * *

तेजमन्त तरवाल तरुण तामस भरें वाढल।
सिन्धु पार सम्भूत तरणि रथ रहइ तें काढल॥
गवण पवन पछुआव वेगें मानसहु जीति जा।
धाय धूप धसमसइ वज्ज जिमि गज्ज भूमि पा॥
सङ्गाम भूमितल सञ्चरइ नाच नचावइ विविह परि।
अरिराअन्ह लच्छि अछोलि ले, पूर आस असवार कइ॥

* * *

वेवि सहोअर राअ गिरि लहिअउँ वेवि तुरंग।
पास पसंसए सव्व जा दूर सत्तु ले भंग॥
तेजी ताजी तुरअ चारि दिश चप्परि छुट्टइ।
तरुण तुरक असवार वाँस जओ चाबुक फुट्टइ॥
मोजाओ मोओ जोलि तीर भरि तरकस चापे।
सीगिन देइ कसीस गव्व कए गरुओ दापे॥
निस्सरिअ फौद अणवरत, कत तत परिगणना पारके।
पअ भारें कोलअहि भोलकर, कुरुम उँलटि करवट्ट दे॥

अरिल्ल

कोटि धनुद्धर धावथि पायक,
लष्ख संख चलिअउँ ढलवाइक।
चलु फरिआ इक अंगे चंगे,
चमक हाइ खग्गग्ग तरंगे॥
मत्त मगोल वोल णहि बुज्झइ,
पुन्दकार कारण रण युज्झयी।
कॉच मासु कवहु कर भोअण,
कादम्वरि रसे लोहित लोअन॥
जोअन वीस दिनद्धे धावथि,
बगल क रोटी दिवस गमावथि।
वलके काटि कमानहि जोले,
धाजे चलथि गिरि उप्पर घोरें॥
गो वम्भन वधँ दोस न मानथि,
पर पुर नारि वन्द कए आनथि।
हस हरषे रुण्ड हासह जहिं,
तरुणे तुरुक वाचा सए सह सहि॥
अरु कत धाँगड देखि आथि जाइतें;
गोरु मारि मिसमिल कए षाइतें।
अरु धाँगड कटकहि लटक वड जे दिस धाड़ें जाथि,
तं दिस केरी राए घर तरुणी हट्ट विकाथि॥

माणावहला छन्द

सांवर एक हाँक तन्हि का हाथ।
चथइञे कोथइञे वेढल माथ॥
दूर दुग्गम आगि जाराथि,
नारि विभारि बालक माराथि।
लूडि अरजन पेडे वए,
अन्याञे वृद्धि कन्दल खए॥
न दीना क दया न सकता क डर,
न वासि सम्वर न विआहीं घर।
न पापक गरहा न पुन्यक काज,
न शत्रु क शंका न मित्र क लाज॥
न थीर वचन न थोड़ ग्रास,
न जस लोभ न अपजस त्रास।
न शुद्ध हृदय न साधुक संग,
न पिउँ वाँउँ पसञो न युद्ध भंग॥
ऐसो कटकहिं लटक वड, जाइतें देषिअ बहुत।
भोअण भष्खण छाड नहि गमणे न हो परिभूत॥
ता पाछे आवित्त हुअ हिन्दू दल गमनेन।
राजा गणए न पारिअइ राउत लेख्खइ केण॥

६

महाकवि देव

जीवन-परिचय

देवदत्त, उपनाम 'देव' का जन्म सं० १७३० वि० (सन १६७४) में हुआ। इन्होंने स्वयं अपने ग्रन्थ 'भावविलास' में निम्नलिखित परिचय दिया है—

सुभ सत्रह सै छियालिस, चढ़त सोरहीं वर्ष।
कढ़ी देव मुख देवता भावविलास सहर्ष॥

देव जी का सम्मान दिल्लीपति के शाहज़ादा आज़मशाह ने किया। तथा भवानीदत्त वैश्य, फफूँद के कुशलसिंह, राजा उद्योत-सिंह आदि के नामों पर भी इनके ग्रन्थ हैं। तदनंतर राजा भोगी-लाल को पाकर आपने अपने पहले आश्रयदाताओं को सर्वथा भुला ही दिया। परन्तु वहाँ भी ये बहुत देर तक न ठहरे। इसके पीछे इनका कुछ पता नहीं कि कहाँ रहे या कहाँ नहीं। या तो अपने लिये आश्रयदाता ढूँढने को अथवा और किसी कारण से इन्होंने देश-विदेशों में खूब भ्रमण किया। कुछ भी हो, इनके

ग्रन्थ बहुत ही उत्कृष्ट हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं में घनाक्षरियों की संख्या सवैयों से अधिक रक्खी है। और उत्कृष्टता में भी उनकी घनाक्षरियाँ सवैयों से कम नहीं। इनकी रचनाओं को कहीं से भी पढ़ लीजिए, आपको कहीं भी कोई त्रुटि दृष्टिगोचर न होगी।

इनकी कविता में चोरी बहुत कम है। अधिक अश्लीलता भी नहीं पाई जाती।

ये बड़े रसिक व्यक्ति थे। देशाटन में जहाँ-जहाँ भी ये जाते रहे, वहाँ की स्त्रियों को आपने बहुत ध्यानपूर्वक देखा। इन्होंने प्रत्येक जाति और प्रत्येक देश की स्त्रियों का बड़ा ही सुन्दर व सच्चा वर्णन किया है।

इनकी भाषा ठेठ व्रज है। विद्वानों का मत है कि भाषा की उत्कृष्टता में देव तथा मतिराम सर्वोच्च हैं। इस विषय में कोई कवि इनकी समता को नहीं पहुँच सका। कोमलता और सरलता, इन दो बातों ने इनकी भाषा को उत्कृष्ट बनाया हुआ है। इनकी कविता में श्रुतिकटु शब्द ढूँढने से भी बहुत कम मिलते हैं। यदि कोई अत्युक्ति न समझी जाय तो यह भी सत्य से दूर नहीं कि देव की भाषा मतिराम की भाषा से भी कहीं उन्नतावस्था को पहुँची हुई है। इनकी भाषा में निम्नलिखित गुण मतिराम की कविता से अधिक हैं—

(क) इनकी भाषा में अनुप्रास भरे पड़े हैं। आप जो शब्द

उठाते थे, प्राय: उसी प्रकार के कई शब्द उसके पीछे रखते चं
जाते थे। और जब वह श्रेणी छोड़ते थे, तब उसी के शब्दों का के
और अक्षरक्रम उठाकर उसकी समता के शब्द रखने लगते थे
इस प्रकार एक साथ आप कई प्रकार के अनुप्रास रख जाते थे।

(ख) इनके प्राकृतिक वर्णन पढ़कर ऐसा विदित होता है।
इन्हें प्रकृतिनिरीक्षण का भी बड़ा शौक़ था। मानव प्रकृति
वर्णन करने में तो आप पराकाष्ठा तक पहुँचे हुए थे। नायिकाओं
वर्णन ऐसा सुन्दर किया है, मानों चित्र खींचकर ही सामने धर दि
हो। नायिकाओं के विषय में ऐसा सुन्दर वर्णन कदाचित् ही कि
कवि ने किया होगा। इनकी कविता से विदित होता है कि क
और चित्रकार में कितना घनिष्ठ संबंध है।

कई विद्वानों का विचार है कि इनकी रचनाओं
शब्दाडम्बर बहुत है; परन्तु हमारे विचार में वे भूल करते हैं। उन
भाषा अद्वितीय अवश्य है, पर साहित्य-गौरव की तुलना में
भाषा का पद ऊँचा नहीं समझते। देव का अपना भी यही मत है

प्रेम का वर्णन आपका अनुपम है। प्रेम में आपने प
पत्नी की प्रीति को ही मुख्य स्थान दिया है। आपने नायक अ
नायिका का पृथक् २ वर्णन नहीं किया, प्रत्युत मिला हुआ ही वर्
किया है। हमारे विचार में देव के अन्य गुण इतने प्रबल हैं
इनके भाषासंबंधी गौरव को छोड़ देने से भी इनका स्थान व
का वहीं रहता है। यदि आपको आचार्य कहा जाय तो
उपयुक्त ही है, अनुपयुक्त नहीं।

इनकी निम्नलिखित पुस्तकें उपलब्ध हुई हैं :—

भावविलास, अष्टयाम, भवानीविलास, कुशलविलास, शब्दरसायन, सुखसागरतरंग, नीतिशतक, वैराग्यशतक, सुजानचरित्र, रागरत्नाकर, देवशतक, सुंदरीसिंदूर, शिवाष्टक, सुजानविनोद, प्रेमतरंग, देवचरित्र, जातिविलास, देव-माया-प्रपंच नाटक, वृत्तविलास, नखशिख, प्रेमदर्शन, रसानंदलहरी, प्रेमदीपिका, सुमिलविनोद, राधिकाविलास और दुर्गाष्टक।

जगद्दर्शन पच्चीसी से

खाल ही की खोल में अखिल ख्याल खेलि खेलि,
गाफ़िल ह्वै भूल्यो दुख दोख की खुशाली तैं।
लाख लाख भाँति अभिलाख लखे खोटे खल;
अलख लख्यो न लखी लालन की लाली तैं॥
पुलकि पुलकि 'देव' प्रभु सों न पाली प्रीति,
दै दै करताली न रिझायो बनमाली तैं।
झूठी झलमल की झलक ही में भूल्यो जल,
पल की पखाल खल खाली खाल पाली तैं॥१॥

*   *   *

ऐसो जो हौं जानतो कि जै है तू विषै के संग,
ए रे मन मेरे, हाथ पाँव तेरे तोरतो।
आज लौं हौं कत नरनाहन की नाहीं सुनि,
नेह सों निहारि हारि बदन निहोरतो॥

चलन न देतो 'देव' चंचल अचल करि,
    चाबुक चितावनीन मारि मुख मोरतो ।
भारो प्रेम पाथर नगारो दै गरे मो बाँधि,
    राधा वर विरुद के वारिधि में बोरतो ॥२॥

*   *   *

सवैया

हाय दई इहि काल के ख्याल में,
    फूल से फूलिय सब कुम्हिलाने ।
या जग बीच बचे नहिं मीच पै,
    जे उपजे ते मही में मिलाने ॥
'देव' अदेव बली बलहीन,
    चले गये मोह की हौंस हिलाने ।
रूप कुरूप गुनी निगुनी, जे
    जहाँ उपजे ते तहां ही बिलाने ॥३॥

*   *   *

बागो बनो जरपोस को ता महिं ओस को हार तन्यो मकरी ने ।
पानी में पाहन पोत चल्यो, चढ़ि कागद की छतुरी सर दीने ॥
काँख में बाँधि कै पाँख पतंग के 'देव' सुसंग पतंग को लीने ।
मोम के मंदिर माखन को मुनि बैठ्यो हुतासन आसन कीने ॥४॥

*   *   *

संपति में ऐंठि बैठि चौतरा अदालति के,
विपति में पैन्हि बैठे पायँ झुनझुनियाँ।
जेतो सुख संपति इतोई दुख विपति में,
संपति में मिरजा विपति परे धुनियाँ॥
संपति ते विपति, विपति हू ते संपति है,
संपति औ विपति बराबर कै गुनियाँ।
संपति में काँय काँय विपति में भाँय भाँय,
काँय काँय भाँय भाँय देखी सब दुनिया॥५॥

* * *

मकरी के तागे बनि बागे पहिरत, चढ़े
पौन के डँडेरे नभ डोलत न डरपै।
वारि के बब्लूलनि के बनिज बजार बैठे,
सपने की संपै गनि सौंपै बड़े थर पै॥
प्रेतनि सौं प्रीति प्रेम चरचा चुरैलनि सों,
मोम के महल रचै सिखी के सिखर पै।
बूँद गहि बादर पै चढ़्यो नहिं जाय मूढ़,
फेर चढ़ो चाहत धुआँ के धौर हर पै॥६॥

* * *

भ्रम को सो भूत अरु भूत की सी सेना अरु,
सेना को सो सोर सनसार अनुमान है।
भयो भयो गयो गयो पेखन के जैसो ख्याल,
फेर नहिं खोज रोज आपन पयान है॥
रोवत हँसत भूल्यो गावत नचत देखि,
माया मेरे 'देव' की कि मेरो ई अयान है।
जी में यह जान जग जानत मसान मूँदि,
देखि नैन कान तहाँ कैसो सुन्नसान है॥७॥

* * *

गुरुजन जाँवन मिल्यो न भयो दृढ़ दधि,
मथ्यो न विवेक रई 'देव' जो बनायगो।
माखन मुकुति कहाँ छाड़्यो न भुगुति जहाँ,
नेह बिनु सिगरो सवाद खेद नायगो॥
बिलखत बच्यो मूल कच्यो रुच्यो लोभ भाँडे,
तच्यो क्रोध आँच पच्यो मदन छिनायगो।
पायो न सिरावन सलिल छिमाछीटन सों,
दूध सो जनम बिन जाने उफनायगो॥८॥

* * *

अकबर वीर पर वीर कविवर केसो,
गंग की सुकविताई गाई रस पाथी नै।
बरनि बरनि नारी नरनि धरनिपति,
मोहि लीने ताना रीरी ता धनं तताथी नै॥
बिन भगवंत के भजन अंत विपति है,
देव गति पाई कहूँ संपति के साथी नै।
एक दल सहित बिलाने एक पल ही में,
एक भये भूत एक मीजि मारे हाथी नै॥९॥

*　　*　　*

कहूँ जोगी भेस कै जगावत अलेख कहूँ,
संन्यासी कहाय मठ संन्यासी ठयो फिरै।
वैरागी के रूप कहूँ जंगम अनूप रस,
स्वाँग हू बनाय संग रंग उनयो फिरै॥
छुधा छोभ छीन कहूँ पंडित प्रवीन कहूँ,
हरि रंग दीन तीन तापन तयो फिरै।
लोभ की लपेट काम क्रोध की दपेट बीच,
पेट की चपेट लागे चेटकी भयो फिरै॥१०॥

*　　*　　*

राजत राज समाज में बाजत, साजत है सुख साज घनेरो।
आप गुनी गल बाँधे गुनी के, सुबोल सुनाय कियो जग चेरो॥
खाल को ख्याल मढ्यो बजे ढोल ज्यों, 'देव' तू चेतत क्यों न सबेरो।
आखिर राग न रंग न बेसुर फूट गयो फिरि काठ को घेरो॥११॥

*　*　*

भीतर भारे भँडारन जे भरि,
भीजे सुगंध की बोयन ही में।
बाहिर ह्व रथ हाथी तुरंग,
घने सुख लीजत लोय नहीं मैं॥
आठहु याम बिजै धुनि बाजि,
सुदेखउ 'देव' अहो ऽयन ही मैं।
घास जटा सिर जोगी लौं ते घर,
ठाड़े घमात धमोयन ही मैं॥१२॥

*　*　*

जाने कहावत है जग में जन जानै नहीं जप फांसि जिरी को।
आपुन काल के जाल पर्यो, अरु चाहत और की राजसिरी को॥
'देव' सुदौरत दूरि ते नीच, नगीच न देखत कीच रिरी को।
हौं तकौं स्वान कों, स्वान बिली कों, बिली तकै चूहा को, चूहा रिरी को

काहू न संग गनिका जिय, कोको न कोपि गयो कुपरी को।
'देव' तू काको भयो बिगरै सठ झूठो झुरै झिगरै झुपरी को॥
राख में राखि सकैगो जु राखत, या तन चंदन की चुपरी को।
स्वान मसान में खैंचिहैं खोखरि, जंबुक खोहन में खुपरी को॥

*   *   *

एक परि सोवत अनेक होत सपने में,
एक न अनेक सुखपति में परम है।
पर मन सुखपति तुरिया में लीन भयो,
काहे को बहुरि 'देव' कौतुक करम है॥
देखि देखि भीत ज्यों अँधेरे भीति जाने भूत,
जेवरी को जानैं साँप पायो न मरम है।
हौं ही तौलों लोक जब हौं न तब कौन जाने,
काहे को जगत कछु मेरो ही भरम है॥

*   *   *

पाँख ते पखेरू कै पखेरू ह्वै ते करै पसू,
पसुन पखेरू फिर पेख्यो पाँख हू न है।
सूत वारि साबित कै गिलि उगलत मोती,
मोति गिलि वही सूत काढ़ि देत दून है॥

बाजीगर को सो ख्याल मोही में जगत फिर,
सूत औ न मोती कछु हाथ मुख हू न है।
एक ते अनेक कै पदारथ लौं पूरो करि,
लेखो करि देखो एक साँचो और सून है ॥१६॥

* * *

मिश्रित पद्य

कोई कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ,
कोई कहो रंकिनी कलंकिनी कुनारी हौं।
कैसो नर लोक परलोक बर लोकनि मैं,
लीन्हीं मैं अलोक लोक लोकनि ते न्यारी हौं॥
तन जाउ, मन जाउ, 'देव' गुरुजन जाउ,
प्रान किन जाउ, टेक टरति न टारी हौं।
बृन्दावन वारी बनवारी की मुकटवारी,
पीत पट वारी वहि मूरति पै वारी हौं ॥१॥

* * *

जबै ते कुँवर कान्ह रावरी कला निधान,
कान परी वाके कहूँ सुजस कहानी सी।
तब ही ते 'देव' देखी देवता सी हँसती सी,
रीझती सी खीझती सी रूठती रिसानी सी॥

छोही सी छली सी छीन लीनी सी छकी छिन सी,
जकी सी टकी सी लगी थकी थहरानी सी।
बींधी सी बँधी सी विष बूड़ती विमोहित सी,
बैठी बाल बकति बिलोकति बिकानी सी ॥२॥

* * *

सवैया

जाके न काम न क्रोध विरोध न, लोभ छुवै नहिं छोभ को छाहीं।
मोह न जाहि रहे जग बाहिर मोल जवाहिर ता अति चाहीं ॥
बानी पुनीत त्यों 'देव' धुनी, रस आरद शारद के गुन गाहीं।
सीस ससी सविता छविता, कविता हि रचै कविताहि सराहीं॥

* * *

बारे बड़े उमड़े सब जैबे को, तौन्ह तुम्हें पठवे बलिहारी।
मेरे तो जीवन 'देव' यही धुन, या व्रज पाई मैं भीख तिहारी ॥
जानै न रीत अथाइन की, नित गाइनि मैं बन भूमि निहारी।
याहि कोऊ पहिचाने कहा, कछु जानै कहा मेरो कुंजबिहारी ॥

* * *

प्रेम पयोधि परो गहिरे अभिमान को फेन रह्यो गहि रे मन।
कोप तरंगनि सो बहि रे पछिताय पुकारत क्यों बहिरे मन ॥

'देव' जू लाज जहाज ते कूदि रह्यो मुख मूँदि, अजौं रहि रे मन ।
जोरत तोरत प्रीति तुही अब तेरी अनीति तुही सहि रे मन ॥

*　　　*　　　*

एकै अभिलाख लाख-लाख भाँति लेखियत,
देखियत दूसरो न 'देव' चराचर मैं ।
जासौं मनु राचै तासौं तनु मनु राचै, रुचि
भरि के उघरि जाँचै साँचै करि कर मैं ॥
पाँचन के आगे आँच लागे ते न लौटि जाय,
साँच देइ प्यारे को सती लौं बैठि सर मैं ।
प्रेम सौं कहत कोई ठाकुर न ऐंठौं, सुनि
बैठो गाड़ि गहिरे तौ पैठो प्रेम घर मैं ॥

*　　　*　　　*

औचक अगाध सिंधु स्याही को उमड़ि आयो,
तामैं तीनौं लोक बूड़ि गये एक संग मैं ।
कारे-कारे आखर लिखे जु कारे कागद,
सु न्यारे करि बाँचै कौन जाँचै चित भंग मैं ॥
आँखिन में तिमिर अमावस की रैन जिमि,
जंबु-रस-बुंद जमुना जल तरंग मैं ।

यों ही मन मेरो मेरे काम को न रह्यो माई,
स्याम रंग ह्वै करि समान्यो स्याम रंग मैं॥

*　　*　　*

पावस

सहर-सहर सोधों सीतल समीर डोलै,
घहर-घहर घन घेरि कै घहरिया।
झहर-झहर झुकि झीनी झरि लायो 'देव',
छहर-छहर छोटी बूँदन छहरिया॥
हहर-हहर हँसि-हँसि कै हिंडोरे चढ़ी,
थहर-थहर तन कोमल थहरिया।
फहर-फहर होत पीतम को पीत पट,
लहर-लहर होति प्यारी की लहरिया॥

*　　*　　*

'देव' नभ-मंदिर में बैठारयो पुहुमि पीठ,
सिगरे सलिल अन्हवाये उमहत हौं।
सकल महीतल के मूल फल फूल दल,
सहित सुगंधन चढ़ावन चहत हौं॥

अगिनि अनन्त धूप दीपक अखण्ड ज्योति,
　　जल थल अन्न दै प्रसन्नता लहत हौं।
ढारत समीर चौंर कामना न मेरे और,
　　आठों जाम राम तुम्हें पूजत रहत हौं॥

*　　*　　*

वारे कोटि इन्दु अरविन्दु रस बिन्दु पर,
　　मानै ना मलिन्द बिन्दु समकै सुधासरो।
मलै मल्लि मालती कदंब कचनार चंपा,
　　चंपे हून चाहे चित चरन टिकासरो॥
पदुमिनी तू ही षटपद को परम पदु,
　　'देव' अनुकूल्यो और फूल्यो तो कहा सरो।
रस रिसि रास रोस आसरो सरन बिसे,
　　बीसो बिसवास रोकि राख्यो निसि बासरो॥

*　　*　　*

रीझि रीझि रहसि रहसि हँसि हँसि उठै,
　　साँसैं भरि आँसू भरि कहत दई दई।
चौंकि चौंकि चकि चकि उचकि उचकि 'देव'
　　जकि जकि बकि बकि परत बई बई॥

दुहुन को रूप गुन दोऊ बरनत फिरैं,
पल न थिरात रीति नेह की नई नई।
मोहि मोहि मोहन को मन भये राधिका में,
राधा मन मोहि मोहि मोहन मई मई॥

७

महाकवि पद्माकर

जीवन-परिचय

ऐसा कौन हिंदी-कविता-प्रेमी होगा, जिसने सुप्रसिद्ध 'गंगा लहरी' के रचयिता कविवर पद्माकर का नाम न सुना हो। आपका जन्म सं० १८१० में ज़िला बाँदा में हुआ था और मृत्यु कानपुर में गंगा जी के तट पर सं० १८९० में। इनके पिता का नाम मोहनलाल भट्ट था। वे भी बड़े प्रतिभाशाली कवि थे। ये तैलंग ब्राह्मण थे। रीतिकाल के कवियों में इनका स्थान सब से ऊँचा है। बिहारी को छोड़कर कोई भी कवि रसिकता में इनकी तुलना नहीं कर सकता। ये व्रजभाषा के अंतिम सहृदय कवि थे; इनके पश्चात् व्रजकविता पतन की ओर जाने लगी।

इन्होंने अपनी प्रतिभा के कारण कई राज-दरबारों में प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। आप कुछ दिन बाँदा के हिम्मतबहादुरसिंह के यहाँ रहे और उन्हीं के नाम पर 'हिम्मतबहादुर-विरुदावली' लिखी। सितारा-नरेश राघोवा के यहाँ से आपको एक हाथी, एक लाख रुपया

और १० ग्राम मिले। इसके पश्चात् ये जयपुर-नरेश सवाई जगतसिंह की सभा में पहुँचे। जगतसिंह ने इन्हें देखकर कहा कि आजकल के कवि ऐसे होते हैं कि 'उठाउ आस पास तें'। पद्माकर जी ने इसी समस्या पर यह कवित्त बनाकर तत्काल सुनाया :—

सौतिन के त्रास तें रहे धौं और वासत न
आये कौन गाँस से ध्यो करु सो तलास तें।
कहैं 'पद्माकर' सुवास तें जवास तें सु
फलन की राशि तें जगी है महासासतें॥
चाँदनी विकास तें सुधाकर प्रकाश तें न
राखत हुलास तें न जाउ खसखास तें।
पौन करु आस तें न जाउँ उड़ि वास तें
अरी गुलाब पास तें उठाउ आस पास तें॥

उनकी इस दैवी स्फूर्ति को देखकर महाराज परम प्रसन्न हुए और सारी सभा में उनकी वाहवाही होने लगी। महाराज ने इस कवित्त को सोलह बार पढ़वाया और सोलह हाथी, गांव, पोशाक तथा २५०००) नकद इनाम में दिये। उसी समय महाराज ने उन्हें एक 'नायिका भेद' का ग्रन्थ बनाने की अनुमति दी। महाराज की आज्ञानुसार उन्हीं के नाम पर पद्माकर जी ने अपना प्रसिद्ध 'जगत्विनोद' नामक ग्रंथ बनाया। उक्त कवित्त इसी में प्रौढ़ा उत्कण्ठिता के उदाहरण में दिया गया है। कहते हैं कि इस ग्रन्थरत्न की बनवाई के इन्हें एक लाख रुपये मिले थे। संभवतः 'पद्माभरण' नाम का अलंकार ग्रन्थ भी वहीं पर रचा गया था।

फिर इनकी ख्याति सुनकर ग्वालियर-नरेश दौलतराव सिंधिया की उनसे मिलने की प्रबल इच्छा हुई। उस समय पद्माकर कुष्ठरोग-ग्रस्त हो गये थे और जयपुर से आगरे आ गये थे। महाराज ने सवारी भेजकर इन्हें बुलाया। अन्धे कोढ़ी आदि रोगियों को देखना राजा के लिए शास्त्र में निषिद्ध है। मंत्रियों ने निवेदन किया कि महाराज! परंपरा से ऐसी रीति चली आई है कि ऐसे रोगी राजा के समीप नहीं आने पाते। इसलिए पद्माकर जी को दरबार में न आने देना चाहिए। महाराज ने कहा—अच्छा, मैं पद्माकर को न देखूँगा; इसलिए बीच में परदा डाल दिया जाय। वे भीतर से अपनी कविता पढ़ें। मैं उनके मुख से उनकी कविता सुना चाहता हूँ। वैसी ही व्यवस्था की गई। एक कोठी में पद्माकर बैठाये गये, दरवाज़े में परदा डाल दिया गया और बाहर दालान में महाराज और उनके सभासद बैठे। आज्ञा होते ही पद्माकर ने अपने कविता-समुद्र को तरंगित किया। जैसे ओज-भरे इनके कवित्त होते थे, वैसा ही बलपूर्ण इनका पढ़ना भी था। इन्होंने महाराज की प्रशंसा में ऐसे भड़कीले छन्द पढ़े कि महाराज मुग्ध हो गये। उनसे न रहा गया और झट परदा हटा भीतर जाकर पद्माकर को गले लगा लिया।

कुछ दिन पद्माकर बड़े सम्मान के साथ ग्वालियर में रहे। उन्होंने महाराज की आज्ञा से 'आलीजा प्रकाश' नामक नायिका भेद का ग्रन्थ भी बनाया। इस ग्रन्थ में महाराज की प्रशंसा के तथा अन्य विषयों के कुछ स्फुट छन्दों को छोड़कर प्रायः सभी छन्द 'जगत्‌विनोद' के रक्खे गये हैं। तत्पश्चात् जब उन्हें नाना प्रकार

की औषध और यत्न करने पर भी कुष्ठ को आराम न हुआ तो उन्होंने अपना शेष जीवन गंगातट पर रहकर व्यतीत करना विचारा। जब वह कानपुर के समीप गंगा की शरण में जा रहे थे तो मार्ग में अपने पापों को संबोधन करके यह कवित्त पढ़ते जाते थे :—

जैसे तू पहले मोकौं नेक न डरात हुतो,
तैसे अब हौंहूँ तोसौं नेकहूँ न डरिहौं।
कहै 'पदमाकर' प्रचंड जो परैगो तो
उमंड कर तोसौं भुजदण्ड ठोक लरिहौं॥
चल्योचल चल्योचल बिचल न बीच ही तें
कीच बीच नीच तो कुटुंब को कचरिहौं।
ए रे दगादार मेरे पातक अपार तोहि
गंगा की कछार में पछार छार करिहौं॥

कहते हैं, उसी समय से उनका रोग घटने लगा और कुछ दिन गंगा सेवन करने के उपरांत सर्वथा जाता रहा और वे नीरोग हो गये। उन्होंने गंगा की स्तुति में 'गंगालहरी' नामक कवित्तों का सुंदर ग्रन्थ बनाया है। तदुपरांत उन्होंने कानपुर में गंगातट पर अपना मकान बनवा लिया और वहीं रहने लगे। कहते हैं कि वे वहाँ ७ वर्ष तक जीवित रहे और ८० वर्ष की अवस्था में उनका देहान्त हुआ। भूषण और केशव के पश्चात् इन्हीं का स्थान है, जिन्होंने कविता बनाकर इतना धन कमाया। मरने के समय ये ८० लाख रुपये नकद छोड़ गये थे।

आत्म-परिचय

भट्ट तिलंगाने को बुंदेलखण्डवासी कवि
सुजस-प्रकासी पदमाकर सुनामा हौं।
जोरत कवित्त छन्द छप्पय अनेक भांति,
संस्कृत प्राकृत पढ़ै गुन-ग्रामा हौं॥
हय रथ पालकी गयंद गृह ग्राम चारु,
आखर लगाये लेत लाखन की सामा हौं।
मेरे जान मेरे तुम कान्ह हौ जगतसिंह,
तेरो जान तेरो वह विप्र मैं सुदामा हौं॥

* * *

जगतसिंह-वर्णन

छत्रिन के छत्र छत्रधारिन के छत्रपति,
छाजत छटानि छिति छेम के छवैय्या हौ।
कहै 'पदमाकर' प्रभाव के प्रभाकर,
दया के दरियाव हिन्द हद्द के रखैया हौ॥
जागते जगतसिंह साहेब सवाई,
श्रीप्रताप-नृप-नंद-कुलचन्द रघुरैया हौ।
आछे रहो राजराज राजन के महाराज,
कच्छ-कुल-कलस हमारे तौ कन्हैया हौ॥

*　　*　　*

आप जगदीस्वर ह्वै जग में विराजमान,
हौं हूँ तौ कवीस्वर ह्वै राज तै रहत हौं।
कहै 'पदमाकर' ज्यों जोरत सुजस आप,
हौं हूँ त्यों तिहारो जस जोरि उमहत हौं॥
श्री जगतसिंह महाराज मान सिंहावत,
बात यह साँची कछु काँची ना कहत हौं।
आप ज्यों चहत मेरी कविता दराज, त्यों मैं
उमरि दराज राज! रावरी चहत हौं॥

*　　*　　*

हिम्मतबहादुर-विरुदावली से

तुपकैं तड़क्कैं धड़क्कैं महा हैं,
प्रलै-चिल्लिका-सी झड़क्कैं जहाँ हैं।
खड़क्कैं खरी वैरि-छाती भड़क्कैं,
सड़क्कैं गये सिंधु मज्जैं गड़क्कैं॥

* * *

चलै गोल-गोली अतोली सनंकैं,
मनों भौंर-भीरैं उड़ाती भनंकैं।
चढ़ी आसमानै छई वेप्रमानैं,
मनो मेघमाला गिलै भासमानैं॥

* * *

गिरैं ते मही में जहीं भर्भरा कैं,
मनो स्याम ओरे परैं झर्झरा कैं।
चलैं रामचंगी धरा में धमंकैं,
सुने तें अवाजैं बली वैरि संकैं॥

* * *

तमंचे तहाँ बीर-संचे छुड़ावैं,
कसे बंक बानै निसानै उड़ावैं।

छुटी एक कालैं विसालैं जँजालैं,
जगी जामगी त्यों चलैं ऊँट नालैं॥

*　　　*　　　*

गजैं गाज सी छूटती त्यों गनालैं,
सुनैं लज्जतीं गज्जतीं मेघमालैं।
चलीं मूँगरी उच्च ह्वै आसमानै,
मनो फेरि स्वर्गै चढ़ैं दिग्घ-दानै॥

*　　　*　　　*

परी एक बारै धमाधम धरा है,
मनो ये गिरी इन्द्र हू की गदा है।
किधौं ये विमानन्न की चक्र भुण्डैं,
परी टूटि हैं कै बिराजैं भसुण्डैं॥

*　　　*　　　*

छुटी है अचाका महावान वाली,
उड़ी है मनो कोपि कै पन्नगाली।
खरी कुहकुहाती जुड़ाती नहीं हैं;
चली हैं अनन्तैं दिगंतैं दही हैं॥

*　　　*　　　*

चली चद्दरैं त्यों मचे हैं धड़ाके,
छड़ाके फड़ाके सड़ाके खड़ाके।
छुटे सेरबच्चे भजे वीर कच्चे,
तजैं बाल-बच्चे फिरैं खात दच्चे॥

*　　　*　　　*

छुटे सब्ब छिप्पे करैं दिग्घ टिप्पे,
सबै सत्रु छिप्पे कहूँ हैं न दिप्पे।
करावीन छुट्टैं करैं वीर चुट्टैं,
करी कंध टुट्टैं इतै-उत्त बुट्टैं॥

*　　　*　　　*

चली तोप धाँ-धाँ-धधाँ-धाँइ जग्गी,
धड़ाधड़ धड़ाधड़ धड़ा होन लग्गी।
झड़ाझड़ झड़ा वीर बाँके छुड़ावैं,
भड़ाभड़ भड़ाभड़ भड़ा त्यों मचावैं॥

*　　　*　　　*

दगो यों अराबो सबै एक बारै,
किधौं इन्द्र कोप्यौ महाबज्र डारै।
किधौं सिंधु सातौ सबै भर्भराने,
प्रलैकाल के मेघ कै घर्घराने॥

*　　　*　　　*

सुनी जो अवाजैं सबै बैरि भाजैं,
न लाजैं गहैं छोड़ि दीन्हीं समाजैं।
तजैं पुत्र-दारैं सम्हारैं न देहैं,
गिरैं दौरि उट्ठैं भजैं फेरि जेहैं॥

* * *

उलत्थैं पलत्थैं कलत्थैं कराहैं,
न पावैं कहूँ सोक-सिंधून थाहैं।
तजैं सुन्दरी त्यों दरी में धसे हैं,
तहाँ सिंह बग्घान हू ने ग्रसे हैं॥

* * *

गंगा-लहरी से

वई ती बिरंचि भई बामन-पगन पर,
फैली-फैली फिरी ईस-सीस पै सुगथ की।
आइ कै जहान जन्हु-जंघा लपटाई फेरि,
दीनन के हेत दौरि कीन्हीं तीनि पथ की॥
कहै 'पदमाकर' सु महिमा कहाँ लौं कहौं,
गंगा नाम पायो सोही सब के अरथ की।
चारचो फल-फली फूली गहगही बहबही,
लहलही कीरति-लता है भगीरथ की॥

* * *

कूरम पै कोल कोलहू पै सेष-कुंडली है,
कुंडली पै फवी फैल सुफन हजार की।
कहै 'पदमाकर' त्यों फन पै फवी है भूमि,
भूमि पै फबी है तिथि रजत-पहार की॥
रजत-पहार पर संभु सुरनायक हैं,
संभु पर ज्योति जटाजूट है अपार की।
संभु जटाजूटन पै चंद की छुटी है छटा,
चंद की छटान पै छटा है गंगधार की॥

* * *

करम को मूल तन तन-मूल जीव जग,
जीवन को मूल अति आनँद ही धरिबो।
कहै 'पदमाकर' त्यों आनँद को मूल राज,
राज-मूल केवल प्रजा को भौन भरिबो॥
प्रजा-मूल अन्न सब अन्नन को मूल मेघ,
मेघन को मूल एक जज्ञ अनुसरिबो।
जज्ञन को मूल धन, धन मूल धर्म, अरु
धर्ममूल गंगाजल-बिंदु पान करिबो॥

* * *

सहज सुभाय आय एक महापातकी की,
गंगा मय्या धोई तू तौ देह निज आप है।
कहै 'पदमाकर' सु-महिमा मही में भई,
महादेव देवन में बाढ़ी थिर थाप है॥
जकि-से रहे हैं जम, थकि-से रहे हैं दूत,
दूनी सब पापन के उठी तन ताप है।
बाँची वही वा की गति देखि कै विचित्र रहे,
चित्र को सो लिखो चित्रगुप्त चुपचाप है॥

* * *

गंगा के चरित्र लखि भाष्यौ जमराज यह—
ए रे चित्रगुप्त मेरे हुकुम में कान दै।
कहै 'पदमाकर' नरक सब मूँदि करि,
मूँदि दरवाजेन को तजि यह थान दै।
देखु यह देवनदी कीने सब देव, या तें,
दूतन बुलाइ कै बिदा कै बेगि पान दै।
फारि डारु फरद न राखु रोजनामा कहूँ,
खाता खति जान दै बही को बहि जान दै॥

* * *

जान्यो जिन है न जज्ञ जोग जप जागरन,
जन्महि बितायो जग जोयन को जोइ कै।
कहै 'पदमाकर' सुदेवन की सेवन तें,
दूरि रहे पूरि मति बेदरद होइ कै॥
कुटिल कुराही कूर कलही कलंकि, कलि-
कान की कथान में रहे जे मति खोइ कै।
तेऊ विस्नु-अंगन में बैठे सुर-संगन में,
गंग की तरंगन में अंगन को धोइ कै॥

* * *

जैसे तैं न मोसों कहूँ नेकहू डरात हुतो,
तैसो अब तोसों हौं हूँ नेक हू न डरिहौं।
कहै 'पदमाकर' प्रचंड जो परैगो तौ,
उमंडि करि तोसों भुजदंड ठोंकि लरिहौं॥
चलो-चलु चलो-चलु बिचलु न बीच ही तें,
कीच-बीच नीच तो कुटुंब को कचरिहौं।
ए रे दगादार मेरे पातक अपार तोहि,
गंगा की कछार में पछारि छार करिहौं॥

* * *

आयो जौन तेरी धौरी धारा में धसत जात,
तिनको न होत सुरपुर तें निपात है।
कहै 'पदमाकर' तिहारो नाम जाके मुख,
ताके मुख अमृत को पुंज सरसात है॥
तेरो तोय छ्वै कै औ छुवति तन जाको बात,
तिनकी चलै न जमलोकन में बात है।
जहां-जहां मैया तेरी धूरि उड़ि जाति गंगा,
तहाँ-तहाँ पापन की धूरि उड़ि जात है॥

* * *

जमपुर द्वारे लगे तिनमें किवारे, कोऊ
हैं न रखवारे ऐसे बन के उजारे हैं।
कहै 'पदमाकर' तिहारे प्रन धारे तेउ,
करि अघ भारे सुरलोक को सिधारे हैं॥
सुजन सुखारे करे पुन्य उजियारे अति,
पतित-कतारे भवसिंधु तें उतारे हैं।
काहू ने न तारे तिन्हें गंगा तुम तारे, और
जेते तुम तारे तेते नभ में न तारे हैं॥

* * *

सुचित गोविंद ह्वै कै सेवते कहाँ धौं जाइ,
जल जंतु-पंति जरि जैबे को अमिलती।
कहै 'पदमाकर' सु जादा कहौं कौन अब,
जाती मरजादा ह्वै मही की अनमिलती॥
जल थल अंतरिच्छ पावते क्यों पापी मुक्ति,
मुनिजन जापकन ज्यो न दुरि मिलती।
सूखि जातो सिंधु बड़वानल की झारन सों,
जो न गंग-धार ह्वै हजार धार मिलती॥

* * *

प्रतापसिंह-वर्णन

कामद कला-निधान कोविद कविंदन को,
काटत कलेस किल कल्पतरु कैसे हैं।
कहै 'पदमाकर' भगीरथ से भागवान,
भानुकुल-भूषण भये यों राम जैसे हैं॥
मानिनी-मनोहरन महत मजेजवंत,
माधव-नरिंद-तनै तेजवंत तैसे हैं।
कूरम कुलीन मान सिंहावत महाराज,
साहिब सवाई श्री प्रतापसिंह ऐसे हैं॥

* * *

देत बढ़ा सीस तुम, देत हैं असीस हम,
तुम जसु लेत, हम वसु लेत आये हैं।
कहै 'पद्माकर' तुम सुवरन बरषत,
हम हूँ सुहाये सुवरन बरषाये हैं॥
राजन के राजा महाराजा श्री प्रतापसिंह,
तुम सकबंध हम छंदबंध छाये हैं।
जानियो न ऐसी कि ये विगिर बुलाये आये,
गुन तो तिहारे मोहिं बरवस लाये हैं॥

* * *

सूरत के साह कहै, कोऊ नरनाह कहै,
कोऊ कहै मालिक ये मुलुक दराज के।
राव कहै कोऊ उमराव पुनि कोऊ कहै,
कोऊ कहै साहिब ये सुखद समाज के॥
देखि असबाब मेरो भरमैं नरिंद सबै,
तिन सों कहे मैं बैन सत्य सिरताज के।
नाम 'पद्माकर' डराउ मति कोउ भैया,
हम कविराज हैं प्रताप महाराज के॥

* * *

झूमत मतंग माते तरल तुरंग ताते,
राते-राते जरद जरूर माँगि लाइबो ।
कहै 'पद्माकर' सो हीरा लाल मोतिन के,
पन्नग के भाँति-भाँति गहने जड़ाइबो ॥
भूपति प्रतापसिंह रावरे विलोकि कवि,
देवता विचारैं भूमिलोकै कब जाइबो ।
इन्द्रपद छोड़ि इन्द्र चाहत कविन्द्र-पद,
चाहै इन्दरानी कविरानी कहिवाइबो ॥

* * *

कीरति-कतार करतार कामधेनुन की,
सूरति-विचार घनसार को घरासिबो ।
कहै 'पद्माकर' प्रतापसिंह महाराज,
बोलिबो तिहारो सुधा-सिंधु को बरासिबो ॥
सहज सुभाइ मुसकाइबो मनोहर है,
जगत-प्रसिद्ध आठों सिद्धि को सरासिबो ।
दिल सों दया सों देखिबोई देव-दरसन,
रीझिबो रसायन है पारस परासिबो ॥

* * *

पुच्छन के स्वच्छ जे तरच्छन को तुच्छ करैं,
कैयो लच्छ-लच्छ सुभ लच्छनन लच्छे हैं।
कहै 'पदमाकर' प्रताप नृप-रच्छ, ऐसे
तुरँग ततच्छ कवि-दच्छन को दच्छे हैं॥
पच्छ बिन गच्छत प्रतच्छ अंतरिच्छन में
अच्छ अवलच्छ कला कच्छनन कच्छे हैं।
कच्छी कछवाह के विपच्छन के बच्छ पर,
पच्छिन छलत उच्च उच्छलत अच्छे हैं॥

* * *

ज्वाला तें जहर तें फनिंद फूतकारन तें,
बाड़व की बाढ़ हू तें विषम घनेरो है।
कहै 'पदमाकर' प्रतापसिंह महाराज,
ऐसो कछु गालिब गुनाहिन पै हेरो है॥
चक्र हू तें चिल्लिन तें प्रलै की बिजुल्लिन तें,
जम-तुल्य बिल्लिन तें जगत उजेरो है।
काल तें कराल त्यों कहर काल काल हू तें,
गाज तें गजब्ब त्यों अजब्ब कोप तेरो है॥

* * *

कहर को क्रोध किधौं कालिका को कोलाहल,
हलाहल-हौद लहरात लबालब को।
कहै 'पदमाकर' प्रतापसिंह महाराज,
तेरो कोप देखि यों दुनी में को न दबको॥
चिल्लिन को चाचा है बिजुल्लिन को बाप बड़ो,
बाँकुरो बबा है बड़वानल अजब को।
गब्बिन को गंजन गुसैल गुरु गोलन को,
गंजन को गंज गोल गुंबज गजब को॥

* * *

उच्छलत सुजस बिलच्छ अनवच्छ दिच्छ-
दिच्छन हूँ छीरधि-लौं स्वच्छ छाइयतु है।
कहै 'पदमाकर' प्रतापसिंह महाराज,
अच्छन में ओज परतच्छ पाइयतु है॥
पच्छ बिन लच्छ-लच्छ विकल विपच्छ होत,
गब्बिन के गुच्छ पर तुच्छ ताइयतु है।
पटकत पुच्छ कच्छ कुच्छ पर सेस जब,
रुच्छ कर मुच्छ पर हाथ लाइयतु है॥

* * *

पंथ-परिवार निज दारन को छाड़ि, दावा-
दारन को भाजै कौन सौदा करे जात है।
कहै 'पदमाकर' तुनीरन को तीर त्यों ही,
तानि कै कमानन में रौदा अरे जात हैं॥
साहिब सवाई श्री प्रताप दल सज्जत,
बिहद्द नद्द-नद्दिन में पौदा परे जात हैं।
सौदा बिजै-बृंदन को लादिबे को मानो मद-
मैगल मतंगन पै हौदा धरे जात हैं॥

*　　　*　　　*

गोला-से गयंदन के गोल खोलिबे में झिले,
रान के इसारे लेत बान के उचट्टा-से।
कहै 'पदमाकर' प्रतापसिंह महाराज,
बकसे तुरंग ते उमंग उठे बट्टा-से॥
आछे अच्छरीन के कटाच्छन तें लच्छ गुने,
पच्छ बिन लच्छ अंतरिच्छ घनघट्टा-से।
चाकन में चाक से चतुर्मुख-से चौहट में,
उलट-पलट्टे में पटत्तन के पट्टा से॥

*　　　*　　　*

पारावार-पार लौं अपार झिलि झारन,
अरिंदन के हाल प्रलै-काल के परा परैं।
कहै 'पदमाकर' त्यों ठौर-ठौर दौर-दौर,
दीह दावादारन पै दार के दरा परैं॥
साहिब सवाई श्री प्रतापसिंह तेरी धाक,
धरा के धरैया धकधक्कन धरा परैं।
चंड चक्र चाप-लौं उदंड दंड दाप-लौं,
सुमारतंड ताप-लौं प्रताप के छरा परैं॥

* * *

कंदरन हहरैं अरिंदन की नहरैं,
सुनहरैं उठी धौं का पै कहर-कलाप की।
कहै 'पदमाकर' छतीस छत्रधारिन को,
पारी सी चढ़ी है ज्यों तिजारी तन-ताप की॥
बूझत हौं तुम्हैं महाराज श्री प्रतापसिंह,
कुटिल कला है किधौं कपिल सराप की।
इन्द्र की अटा-लौं नरसिंह की सटा-लौं,
मारतंड की छटा-लौं छटा छहरै प्रताप की॥

* * *

छप्पय

धुवन धुंधरित धूर, धूर-पूरति धुर धुम्मह्ु।
'पदमाकर' परतच्छ, अच्छ लखि परत न भुम्मह्ु॥
कूरम-नृप-मातंग, जंग-जंगन जुटि जुट्टहिं।
छकि छुट्टहिं बग छुट्ट, कुट्ट दिग्गजन उलट्टहिं॥
जिमि घन घमंड घुग्घरत घन, मद-निरझर झर-झर झरहिं।
टुकि टरहिं न टिप्पहिं टिपटिपहिं, टकटकाइ टक्कर करहिं॥

* * *

कवित्त

गाँउ गज-वाजि है दराज कविराजन,
पटैल को पराभव, फतूहन फलै गए।
कहै 'पदमाकर' अभै दै राज-रैयत को,
मंत्रिन को मंत्र दै न काहू सों छलै गए॥
साहिब सवाइ सुख-संपति समाज-साज,
जगत-नरिंदै निज नंदै दै भलै गए।
बास बयकुण्ठ करिबे कों श्री प्रताप, पाक–
सासन के आसन पै पाँव दै चलै गए॥

* * *

होली वर्णन

सवैया

गैल में गाइ कै गारी दई फिरि तारी दई औ दई पिचकारी।
त्यों 'पदमाकर' मेलि मुठी इत पाइ अकेली करी अधिकारी॥
सौं हैं बबा की करैहौं कहौं यहि फाग को लैहुँगी दाव बिहारी।
का कबहूँ मझि आइ हौ ना तुम नंदकिसोर या खोरी हमारी॥

* * *

कवित्त

फहर गई धौं कबै रंग के फुहारन में,
कैधौं तराबोर भई अतर-अपीच में।
कहै 'पदमाकर' चुभी-सी चार चोवन में,
उलचि गई धौं कहूँ अगर-उलीच में॥
हाय इन नैनन ते निकरि हमारी लाज,
कित धौं हेरानी हुरिहारन के बीच में।
उलझि गई धौं कहूँ उड़त अबीर रंग,
कचरि गई धौं कहूँ केसरि की कीच में॥

* * *

हिंडोला-वर्णन

भौंरन को गुंजन बिहार बन-कुंजन में,
मंजुल मलारन को गावनो लगत है।
कहै 'पदमाकर' गुमान हूँ ते मान हूँ ते,
प्रान हूँ ते प्यारो मन भावनो लगत है॥
मोरन को सोर घनघोर चहुँ ओरन,
हिंडोरन को वृन्द छवि-छावनो लगत है।
नेह सरसावन में मेह बरसावन में,
सावन में झूलिबो सुहावनो लगत है॥

* * *

फूलन के खंभा पाट-पटरी सुफूलन की,
फूलन के फँदना फँदे हैं लाल डोरे में।
कहै 'पदमाकर' बितान तने फूलन के,
फूलन की झालरि त्यों झूलति झकोरे में॥
फूलि रही फूलन सुफूल फुलवारी तहाँ,
फूलई के फरस फबे हैं कुंज कोरे में।
फूलझरी, फूल-भरी, फूल-जरी फूलन में,
फूलई-सी फूलति सुफूल के हिंडोरे में॥

* * *

८

महाकवि छत्रसाल

जीवन-परिचय

बुंदेलखण्डकेसरी प्रातःस्मरणीय महाराज छत्रसाल का नाम किसने न सुना होगा। स्वाधीनता के आजीवन उपासकों की श्रेणी में छत्रसाल का नाम बहुत ऊँचा है। दक्षिण में वीरशिरोमणि शिवाजी ने, पंजाब में सिक्खों के (दशम गुरु) गुरु गोविंदसिंह ने तथा राजस्थान में हिंदुपति महाराणा प्रताप ने जो काम किया, वही बुंदेलखंड में महाराज छत्रसाल ने किया है। औरंगज़ेबी युग में वे जीवन-भर हिंदू-जातीयंता के लिए लड़े और प्राणपण से उसकी रक्षा की। आर्य्य का उत्कृष्ट आदर्श सामने रखकर उन्होंने अनुकरणीय शासन किया। भारत के सच्चे इतिहासकार उनका शुभ नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित करेंगे, भले ही पाश्चात्त्य इतिहासलेखक उन्हें अज्ञानान्धकार में छिपा रक्खें।

महाराज छत्रसाल न केवल हिंदुत्व के रक्षक ही थे, प्रत्युत भगवान् के एकान्त भक्त और ऊँचे कवि भी थे।

कवियों का जैसा कुछ सम्मान इन महाराज ने किया, कोई क्या करेगा ? महाकवि भूषण का ही उदाहरण इनकी गुणग्राहकता के लिए पर्याप्त है। भूषण का महाराज शिवाजी के दरबार में अच्छा सम्मान था। एक बार वे साहूजी के यहाँ भली भांति सम्मानित हो छत्रसाल के यहाँ आये। वहाँ भी कवि का यथेष्ट सत्कार किया गया। कवि की विदाई करते समय आपने उनकी पालकी का डंडा स्वयं अपने कंधे पर रख लिया। भूषण यह देखकर गद्गद हो गये और पालकी से कूदकर कहने लगे—'बस, महाराज !

राजत अखंड तेज; छाजत सुजस बड़ो,
गाजत गयंद दिग्गजन हिय साल को।
जाहि के प्रताप सो मलीन आफ़ताब होत,
ताप तजि दुजन करत बहु-ख्याल को॥
साज सजि गज तुरी पैदर कतार दीने,
'भूषन' भनत ऐसो दीन प्रतिपाल को ?
और राव राजा एक मन में न ल्याऊँ अब,
साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को॥'

इसी गुणग्राहकता पर मुग्ध होकर भूषण ने महाराज के लिये 'छत्रसाल दशक' की रचना की है। दशक के कुछ पद्य तो इतने ओजस्वी, उत्कृष्ट और हृदयग्राही हैं कि उन्हें पढ़ या सुनकर कायर भी फड़क उठता है। धन्य है ऐसी गुणग्राहकता ! जौहरी ही जौहरी को पहचानता है। कवि ही कवि को जानता है। महाराज

छत्रसाल स्वयं एक सफल कवि थे, इसी से उन्होंने कवि को अपने हृदय में ऐसा सम्मानपूर्ण स्थान दिया।

महाराज छत्रसाल की कुछ कविताएँ सौभाग्यवश हमें प्राप्त हुई हैं। उन्हीं को हमने अपने इस संग्रह में स्थान दिया है। कविता ऐसी उच्च कोटि की है कि पढ़ते ही बनती है।

सवैया

चाहैं तौ मेरु करैं रज तें, रज रंचक चाहैं तौ मेरु समाहैं।
जे जन पालतीं, ख्यालतीं, ख्यालन तीन हुँ लोकन की महिमा हैं॥
'छतसाल' कहै तिनकी उपमा, कहि को कलपद्रुम कामदुघा हैं।
हैं भव-भीर की मेटन पीर की, श्री रघुबीर समर्थ की बाहैं॥

कवित्त

दिग्गज दुचित्त चित्त सोचत पुरन्दर भे,
आजु मेरे करी कों का भिच्छुक बिलसि है।
देत गजदान भूप दसरथ राज-राज,
राम-जन्म भये कौ बधावनो हुलसि है।
हाथी लै हजारन के हलके सु जाचक हूँ,
आछे अलकेस मानो आय् कै सुबसि हैं।
गोप लै गनेस गिरिजा सो 'छत्रसाल' कहै,
गज के भरम लै भिखारिन बगसि हैं॥

गाई विधि वेदन में व्यास जू पुरानन में,
बालमीकि रामायन परम प्रसंग में।
नारद बिसारद त्यों सारद औ शेष मिलि,
गाई है गनेस हूँ सुरेस सिव संग में॥
पारावार पार कों न पाय 'छत्रसाल' कहै,
मति अनुरूप राम सुजस उमंग में।
मेरी मति अल्प तेरो चरित-कलाप सिंधु,
कृपासिंधु! दीजे अवलंब या तरंग में॥

* * *

नीति-विषयक पद्य

चाहौ धन धाम भूमि भूषण भलाई भूरि,
सुजस सहूर जुत रैयत को लालियौ।
तोड़ादार घोड़ादार बीरन सों प्रीत करि,
साहस सों जीति जंग, खेत ते न चालियौ॥
सालियौ उदंडनि कों दंडनि को दीजो दंड,
करि कैं घमंड घाव दीन पै न घालियौ।
बिन्ती छत्रसाल करै होय जो नरेस देस,
रै है कलेस लेस मेरो कह्यो पालियौ॥

* * *

सुजस सो न भूषन, विचार सो न मंत्री त्यों,
साहस सो सूर कहूँ ज्योतिषी न पौन सो ।
संयम सी ओषधी न, विद्या सो अटूट धन,
नेह सो न बंधु औ दया सो पुन्य कौनसो ॥
कहै 'छत्रसाल' कहूँ सील सो न जीतवान,
आलस सो बैरी नाहिं मीठो कछु नौन सो ।
सोक कै सी चोट है न भक्ति ऐसी ओट कहूँ,
राम सो न जाप और तप है न मौन सो ॥

*　　*　　*

जाके वीर एक-एक काल तें कराल हुते,
जानैं गहि काल आनि पाटी में बँधायौ है ।
कुंभकर्न भ्रात जाकी धाक तें सकात लोक,
पूत इन्द्रजीत इन्द्र जीतिकैं कहायौ है ॥
कहै 'छत्रसाल' इन्द्र वरुन कुबेर भानु,
जोरि जोरि पानि आनि हुकुम मनायौ है ।
जौन पाप रावन के भौना में न छौना रह्यो,
तौन पाप लोगन खिलौना करि पायौ है ॥

*　　*　　*

दोहा

रैयत सब राजी रहै, ताजी रहै सिपाहि।
छत्रसाल ता राज कौ, बार न बाँको जाहि ॥१॥
कृपनाई भाई न भल 'छत्रसाल' के जान।
दानाई दातान की, बलि-बस भे भगवान ॥२॥
बालक लौं पालहि प्रजा, प्रजापाल 'छतसाल'।
ज्यों सिसु-हित अनहित सुहित, करत पिता प्रतिपाल ॥३॥
प्रनतारति भंजन विरद, दायक अभिमत काम।
छत्रसाल-संतान कों, इक सुभ-दायक स्याम ॥४॥

* * *

श्रीकृष्ण-कीर्तन के कुछ और सरस पद्य

गोद में मोद सों लैकैं ललै, छत्रसाल बलायें लई बहुतेरी।
प्रेम बढ़ाय हियो हुलसाय, ललै ललचाय न भौंह तरेरी॥
पापिन! पाछ कहा समुझी, ब्रजवासिनु की जिय-जीवन ए री।
कान्हर कों विष देति अरी, कसकी छतिया न, कसाइन! तेरी॥

* * *

केती मृगनैनि मृगी घूमति अधीर बीर ,
याही ब्रज-कानन में सोर खोर-खोर है।
खोजत फिरैहै को बचैहै, क्यों बचैंगी बाल ,
खेलैहै अहेर आय नन्द को किसोर है ॥
कहै 'छत्रसाल' वाकौ रूप लखैं अंग-अंग ,
रंग भरि जात, कुलकानि आनि तोर है।
हानि होत मान की सुबाँसुरी सुने तें नैक ,
तान भई तीर औ कमान भई पोर है ॥

* * *

विधि-करतव्यता की करामात जेती, तेती
सब ब्रजराजजू के हाथ सुनियतु हैं।
हाथ ब्रजराजजू कौ भक्ति के अधीन सुन्यौ ,
भक्ति नित सत्य के अधीन गुनियतु हैं ॥
धर्म के अधीन सत्य धर्म कर्म के अधीन ,
कर्म बस 'छत्रसाल' बयौ लुनियतु हैं।
सुनत सुनावत में लोक-कहनावत में ,
जैसो रचवार तैसो साँचो चुनियतु हैं ॥

* * *

राधा के सनेह हित गेह तजि आयौ इतै ,
और कहा कहौं गाय बिपिन चरायौ मैं ।
जायौ जौन जनक तौन तनिक न मान्यौ मैं ,
राधा के सनेह नन्दलाल हूँ कहायौ मैं ॥
राधा के सनेह मेह-नायक कों जीत्यौ जाय,
कहै कृष्ण 'छत्रसाल' गिरि कों उठायौ मैं ।
मोकों कहै लाख बार भाषि-भाषि साखि दैदै ,
राधा बिनु, ताहि नैक भूलिहू न भायौ मैं ॥

* * *

ग्राह नैं गजब करि गज कों ज्यों ग्रस्यौ आय ,
छूटत छुड़ायौ नाहिं, गयौ हारि बल तें ।
लोप भयौ कोप कौ कलाप, ओप चोप गयौ ,
करिहैं पयान प्रान आजु याहै पल तें ॥
कहै 'छत्रसाल' करी कर लै कमल ध्यायौ ,
कंजनैन कृष्ण किधौं कढ्यौ केलि-जल तें ।
करि ही के कमल तें कै कर के कमल तें ,
कमल के नल तें कै कमल के दल तें ॥

* * *

भूलि जिन जैयौ हमें द्वारका कौ राज पाय ,
ए जू प्राननाथ ! कहूँ राजसी महल में ।
प्रीति लरिकाई की, प्रतीति गोप ग्वालिन की ,
जीति मघवाहि गिरिराज लै सहल में ॥
रास-रमनी कों, धरनी कों रास-मंडल की ,
भूलियौ न नंदै नंद-रानी कों अहल में ।
जाहु चिरराजु करौ महाराज ! छत्रसालै ,
राखियौ जू पास खास महल-टहल में ॥

*　　*　　*

छप्पय

कृष्ण, शौरि, रुक्मिनी-रमन, राधावर, गिरिधरि ।
दामोदर, ब्रजचंद, देवकीनंद, श्याम, हरि ॥
कंसाराति, गुपाल, नंदनंदन, सुबेनु-धर ।
वासुदेव, सकटारि, बका-केसी-आघारि, वर ॥
मोहन, मुकुंद, गोविंद, जै धेनुकारि, गोपीरमन ।
शिशुपाल-मल्ल-मर्दन, प्रभो 'छत्रसाल' के अघदमन ॥

*　　*　　*

भक्तिसम्बन्धी

पूजन कों देविन की जुरिकैं जमातें आय,
घेरि-घेरि पंथ में घटा सी घुमड़ी परैं।
कहै 'छत्रसाल' संभु-रानि, इन्द्र-रानि विधि-
रानी रमारानी मोद मांड़ि उमड़ी परैं॥
जाकी ओर राधा की परति दृग-कोर नैक,
रिद्धि सिद्धि ताकी ओर झूमि झुमड़ी परैं।
ओड़ी परैं कौन पै बगोड़ीं एक गोड़ीं दारि,
संपदै निगोड़ीं होड़ा-होड़ी सुमड़ी परैं॥

* * *

कमल गुलाब आब अमल अमोल छवि,
कोमल नवल नवनीत सों अनंदौं मैं।
कहै 'छत्रसाल' नख नखत-कलान-पति,
हौंहुँ लवलीन, भव-फंद में न फंदौं मैं॥
भावगम्य ध्यावत मुनीस सुर सिद्ध सबै,
जिनके सुबस चारि वेद भेद छंदौं मैं।
अति सुखदाय दीन जन के सहाय पाय,
प्यारी राधिका के कर जोरि जोरि बंदौं मैं॥

* * *

देव-पति-रानी, देव-रानी, नग-नाग-रानी ,
दिन-मनि-रानी, चन्द्र-रानी झलाझल की ।
कहै 'छत्रसाल' यच्छरानी अरु पच्छि-रानी ,
गावैं अप्सरानी जासु कीरति अमल की ॥
वानी, महारानी, रुद्र-रानी कर जोरि-जोरि ,
चाहैं कृपा-कोर चारु लोचन कमल की ।
ह्वै कैं परिचारिका ए परतीं पगनि आय ,
करतीं टहल नित्य राधिका-महल की ॥

*		*		*

तुम घनस्याम हम जाचक मयूर मत्त ,
तुम सुचि स्वाति हम चातक तुम्हारे हैं ।
चारुचन्द्र प्यारे तुम लोचन चकोर मोर ,
तुम जगतारे हम छतारे उचारे हैं ॥
'छत्रसाल' मीत मित्रजा के तुम ब्रजराज !
हम हूँ कलिंदजा के कूल पै पुकारे हैं ।
तुम गिरिधारी हम कृष्ण-व्रत-धारी, तुम
दनुज प्रहारे, हम यवन प्रहारे हैं ॥

*		*		*

औरंगज़ेब को उत्तर

जाकौ मानि हुकुम सुभानु तम-नासु करै,
चन्द्रमा प्रकासु करै नखत दराज कौ।
कहै 'छत्रसाल' राज-राज है भँडारी जासु,
जाकी कृपा-कोर राज राजै सुरराज कौ॥
युग्म कर जोरि-जोरि हाजिर त्रिदेव रहैं,
देव परिचार गहैं जाके ग्रह काज कौ।
नर की उदारता मैं कौन है सुधार, हौं तो
मनसबदार सरदार ब्रजराज कौ॥

* * *

१

महाकवि जगन्नाथदास रत्नाकर

जीवन-परिचय

बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का जन्म काशी में सं० १९२३ में हुआ था। ये अग्रवाल वैश्य थे। इनके पूर्वज पहले पानीपत में रहते थे, तथा मुगल-सम्राटों के पास अच्छे २ पदों पर प्रतिष्ठित थे।

आपके पिता बाबू पुरुषोत्तमदास जी फ़ारसी के उद्भट विद्वान् थे। हिंदी-कविता का प्रेम भी उनमें विशेष रूप से पाया जाता था क्योंकि पिता का ही प्रभाव संतान पर पड़ता है। जगन्नाथ-दास जी ने उन्हीं का अनुसरण किया।

जब ये छोटे थे, इनके पिता इन्हें अपने मित्र भारतेंदु हरिश्चंद्र जी के पास ले गये। उन्होंने इनकी एक रचना देखकर भविष्यवाणी की कि 'किसी दिन यह बालक एक प्रतिभाशाली कवि होगा।' और वास्तव में हुआ भी ऐसा ही। इन्होंने अपनी प्रतिभा से उनके कथन को सत्य कर दिखाया।

इनका पठन-पाठन काशी में ही हुआ था। सन १८९१ में इन्होंने फ़ारसी लेकर बी० ए० की परीक्षा पास की। एम० ए० में भी

फ़ारसी का ही अध्ययन किया, परन्तु कुछ एक कारणों से ये परीक्षा में न बैठ सके। सन् १६०० में इन्होंने आवागढ़ स्टेट में नौकरी कर ली किन्तु वहाँ इनका स्वास्थ्य ठीक न रहता था। इन्होंने दो वर्ष कार्य करके त्यागपत्र दे दिया और काशी लौट आये। कुछ दिन विश्राम लेने के पश्चात् सन् १६०२ में ये स्वर्गीय अयोध्या-नरेश सर प्रतापनारायणसिंह बहादुर K. C. I. E. के प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त हुए और उनके मृत्युकाल तक उसी पद पर रहे। तत्पश्चात् इनकी योग्यता से प्रसन्न होकर महारानी साहिबा ने इन्हें अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बना लिया और अंत तक ये उसी पद पर नियुक्त रहे।

पहले आप उर्दू में कविता किया करते थे परन्तु धीरे धीरे प्रतिदिन इनकी रुचि हिंदी की ओर बढ़ती गई और इन्होंने हिंदी-साहित्य का अध्ययन किया, जिसमें इन्हें पूर्णतया सफलता प्राप्त हुई। फिर इन्होंने उर्दू को छोड़ दिया और व्रजभाषा में कविता करनी प्रारंभ कर दी। कुछ ही काल के अनन्तर ये व्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि कहलाने लगे। इनके कवित्तों में साक्षात् देव, पद्माकर और मतिराम के से कवित्तों का आनंद मिलता है। ये बड़े हँसमुख और विशालहृदय के मनुष्य थे। इनका स्वभाव बड़ा मधुर, स्मरणशक्ति बड़ी तीव्र और कविता पढ़ने का ढंग अत्युत्तम था। इन्होंने समालोचनादर्श, साहित्यरत्नाकर, घनाक्षरी, नियमरत्नाकर, हिंडोल तथा हरिश्चंद्र नामक काव्य ग्रन्थों की रचना की। बिहारी पर लिखी हुई इनकी टीका भी देखने योग्य है। गंगावतरण, कल-

काशी, अष्टकरत्नाकर और उद्धवशतक ये चार काव्य-ग्रन्थ इन्होंने और भी लिखे हैं।

आप व्रजभाषा के तो श्रेष्ठ कवि थे ही, किंतु इसके साथ ही साथ खड़ी बोली के भी पूर्णतया पक्षपोषक थे। आप छात्रों के कवि सम्मेलनों में पधारकर उन्हें खूब प्रोत्साहित करते थे। आपका परलोकवास सं० १९८९ में हुआ। इनको एक प्रकार से व्रजभाषा का अंतिम श्रेष्ठ कवि समझना चाहिए। इनकी फुटकल कविताएँ भी बहुत मिलती हैं।

ग्रीष्म

कैधौं अति दुसह दवागि की दपेट कैधौं,
बाड़व की विषम झपेट झरझार है;
कहै 'रतनाकर' दहकि दाह दारुन सौं;
उगिलत आगि कैधौं पावक-पहार है।
रुद्र-दृग तीसरे की ज्वाल विकराल कैधौं,
फेंकति फुलिंग कै फनिंद-फुफकार है;
बीर पति हेत कैधौं अवनि उसास लेति,
ऐसी यह ग्रीषम की भीषम लुआर है॥

* * *

सीरी-सी लगति बिरहागिनी बियोगिनि कौं,
जोगिनि कौं होत पंचताप हू सुहायौ है।

कहै 'रतनाकर' तपाकर ससी कौं जानि,
रैन हूँ चकोरि कैं न चैन चित आयौ है।
सोखे लेत बारि सबै भानु हूँ पिपासित ह्वै,
त्रासित ह्वै हिमगिरि गैल धरि धायौ है;
प्रबल प्रचंड भूरि भीषम अखंड दाप,
ग्रीषम के ताप कौ प्रताप जग छायौ है॥

* * *

ग्रीषम कौ भीषम प्रताप जग जाग्यौ भए,
सीत के प्रभाव भाव भावना भुलानी के;
कहै 'रतनाकर' त्यौं जीवन भयौ है जल,
जाके बिन मानस थिरात नहिं प्रानी के।
नारी-नर सकल बिकल बिललात फिरैं,
भूले नेम प्रेम हूँ की कलित कहानी के;
काहू कैं हियैं मैं रस नैंकु सरसावत ना,
पंचसर हूँ के भए सर बिन पानी के॥

* * *

गजेंद्र-मोक्ष

रमत रमा के संग आनँद-उमंग-भरे,
अंग परे थहरि मतंग अवराधे पैं;
कहै 'रतनाकर' बदन-दुति और भई,
बूँदैं छईं छलकि दृगनि नेह-नाधे पैं।
धाये उठि, बार न उबारन मैं लाई नैंकु,
चंचला हूँ चकित रही है वेग साधे पैं;
आवत वितुंड की पुकार मग आधैं मिली,
लौटत मिल्यौ त्यौं पच्छिराज मग आधे पैं।

*　　　*　　　*

संगवारे महत मतंगनि के संग सबै,
निज-निज प्रान लै पराने पुसकर तैं;
कहै 'रतनाकर' बिचारौ, बल-हार्‌यौ तब,
टेरि हरि पार्‌यौ कल कंज गहि सर तैं।
पहुँचन पायो पुनि वारि लौं न जौलौं वह,
तौलौं लियौ लपकि उबारि हरबर तैं;
एक तैं ललायौ, चक्र एक तैं चलायौ,
गह्यौ एक तैं भुसुंड, पुंडरीक एक कर तैं।

*　　　*　　　*

सुंड गहि आतुर उबारि धरनी पैं धारि,
बिबस बिसारि काज सुर के समाज कौ ;
कहै 'रतनाकर' निहारि करुना की कोर,
बचन उचारि, जो हरैया दुख-साज कौ ।
अंबु पूरि दृगनि विलंब आपनोई लेखि,
देखि-देखि दीह छत दंतनि दराज कौ ;
पीत पट लै-लैकै अँगौछत सरीर कर-
कंजनि सौं पोंछत भुसुंड गजराज कौ ।

* * *

ऊधौ, जसवंत जाइ कंतहिं जताइ दीजौ,
आवत बसंत उर अमित उछाह लै ;
कहै 'रतनाकर' नैं चटक गुलाबनि की,
कोप कै चढ़त तोप मैन बादसाह लै ।
कोकिल के कूकनि की तुरही बजी है अब,
बिरहिनि बारी कहौ कौन की पनाह लै ;
सीतल समीर पैं सवार सरदार गंध,
मंद-मंद आवत मलिंद की सिपाह लै ।

* * *

कोकिल की कूक सुनि हूक हिय माहिं उठै ,
लूक-से पलास लखि अंग अरसान्यौ है ;
करिहैं कहा धौं, धीर धरिहैं कहाँ लौं बीर ,
तीर-सो समीर लागैं पीर सरसान्यौ है ।

पल-पल दूजैं पल आवन की आस जियौं ,
ताहू पर पत्र आनि विष बरसान्यौ है ;
अवधि बदी है काल्हि आइबे की कंत अरु ,
आजु आइ ब्रज मैं बसंत दरसान्यौ है ।

* * *

मिश्रित पद्यावली

सुण्ड गहि आतुर उबारि धरनी पै धारि,
विवस बिसारि काज सुर के समाज कौ ।
कहै 'रतनाकर' निहारि करुणा की कोर,
वचन उचारि, जो हरैया दुख साज कौ ॥
अंबु पूरि दृगनि विलंब आपनोई लेखि,
देखि देखि दीन्ह छत दन्तनि दराज कौ ।
पीत पट लैलै कै अंगौछत सरीर कर,
व्यंजनि सौं पोंछत भुसुण्ड गजराज कौ ॥

* * *

गंगा की महिमा

कहत विधाता सौं विलखि जमराज भयौ,
अखिल अकाज है हमारी राजधानी कौ।
सुरसरि दीन्हीं ढारि भूप के भुलावै माहिं,
कीन्यौ नाहिं नेकहूँ विचार हित हानी कौ ॥
निज मरजाद पै कछू तो ध्यान दीजै नाथ,
कीजै इमि प्रकट प्रभाव बर बानी कौ।
पावै नर नारकी न रंचक उचारि क्यों हूँ,
गंगा को गकार औ चकार चक्रपानी कौ ॥

* * *

साहित्य-सुधा

दीबे काज विप्र कौं बुलाई यदुराज, जानि
हिय हुलसाईं सुरराज के बगर मैं।
कहै 'रतनाकर' उमँगि रिद्धि-सिद्धि चलीं,
होड़ करि दौरत दरेरत डगर मैं ॥
सौंहैं आनि पै न उकसौं हैं आनि रोकि सकीं,
बिबस बिचारी बेगि झोंक के झगर मैं।
दमकीं दिखाय द्वारिका में हम कीं जो फेरि,
ठमकीं सु आय कै सुदामा के नगर मैं ॥

करुना प्रभाव कल कोमल सुभाव वारौ,
जन रखवारो सदा दिवस त्रिजामा कौ।
कहै 'रतनाकर' कसकि पीर पावै उर,
ध्यान हूँ परे पै दुख दीन नर वामा कौ॥
याही हेत आखत को राखत विधान नाँहि,
पूजा माँहि पीतम प्रवीन सत्यभामा कौ।
पाण्डववधू को बच्यौ भात सुधि आइ जात,
छाइ जात नैनन पै तंदुल सुदामा कौ॥

* * *

मारुत की लहरें

वारिधि वसंत बढ़्यो चाव चढ़्यो आवत है,
बिबस वियोगिनी करेजो थामि थहरैं।
कहै 'रतनाकर' त्यों किंसुक-प्रसून-जाल,
ज्वाल बड़वानल की हेरि हिये हहरैं॥
अबधौं उबारे कौन अबला विचारिन कौं,
धीरज-धरा पै कहौ कैसे पग ठहरैं।
भौंर चहुँ ओर भ्रमैं, एको पल नाहिं थमैं
सीतल सुगंध मंद मारुत की लहरैं॥

शब्दार्थ-कोष

मलिक मुहम्मद जायसी

सेवँरि भूआ–सेमर की रुई
रात–लाल
सिसिटि–सृष्टि
सरा–चिता
हिअइ–हृदय
निसरा–निकला
परेवा–चिट्ठीरसाँ
काँठा–गले की रेखा
हरिअर–हरा
पनिग–पतंग
निरमरी–निर्मल
कबिलासू–कैलाश पर्वत
बहुरा–लौटा
अछरिन्ह–अप्सराओं
बारी–बालिका
ओनाहीं–झुकते हैं
सुरुज–सूर्य
परगसी–प्रकाशित हुई
सूरू–सूर्य
रिनि-बंधी–ऋणबद्ध
नग-वासी–नागपाशी
अरुझइ–उलझता
बाँदू–क़ैद
पाँडक–भूरा
गिउ–ग्रीवा
ऊभि–ऊर्ध्व
दुहेला–कठिन

पिरिथुमिँ–पृथ्वी
मेरवइ–मिलावें
लाहा–लाभ
निरारे–न्यारे
छहराऊँ–फैला दूँ
सासाँ–श्वास
चिन्हारी–पहिचान
डिठिआरा–दृष्टि युक्त
छीजिअ–क्षीण

महाकवि आलम

अलेख–अज्ञेय
निमेष–पल
विहवल–व्याकुल
ढरत हैं–द्रवित होते हैं
सुरति–याद
बिसासी–विश्वासी
झूरी–खुश्क
तरनिजा–यमुना
औधि–अवधि
अधारी–काठ का डंडे में लगा हुआ पीढ़ा जिसे साधु जन सहारे के लिये रखते हैं
गाँसी–तीर या बरछी का फल
पासी–फाँसी
साँसी–जीवन
झखकेतऊ–कामदेव
राजिवनयन–कमलनयन
विख–विष और जल
अरबिंद–कमल
हंसनंदनी–यमुना
लोल–चंचल
जीबी–जिह्वा
धूरिजटी–शिवजी
वासुकि–शेषनाग
मंगला–पार्वती
हिंगलाज–दुर्गा
कलनि–कलाएँ
धौरी–कपिला

महाकवि केशव

अटा–अट्टालिका
डके–ढंके
वच्छोज–वक्षोज
जूह-नारी–स्त्री-समूह
सस्त्रसाला–शस्त्रागार

अद्रि–पर्वत
पन्नगी–नागिनी
हाला–मदिरा
कारिका–नटी
सिंसुपा-मूल–शीशम की जड़
कृसानु–अग्नि
सची–इन्द्राणी
पयो-देवता–वरुण
कोस–कोष
पद्मा–लक्ष्मी
तच्छका–तक्षका
आरक्त-पत्रा–लाल पत्तों वाली
जुन्हाइ–ज्योत्स्ना
ससुरारि–ससुराल
अंगना–स्त्री
दारिद–दरिद्रता
खीझिय–चिढ़ना
सालई–दुखी करे
सूतक–नवप्रसूता स्त्री
राँड़–विधवा
अघ ओघ–पापों का समूह
आगररु–घर
राजै–विराजमान हैं

वामदेव–महादेव
शिखीन–मोर
पाकशासन–इन्द्र
हरा–पार्वती
अवदात–उज्ज्वल
सुदेश–सुन्दर
शीरष–सिर
शिरोरुह–बाल
तनोरुह–रोम
जरा–बुढ़ापा
जरकंबर–वृद्धावस्था का कंबल
उदात–विशद
व्याधिनि–रोग
मदन–कामदेव
रजनिपति–चन्द्रमा
आलबाल–क्यारी
वंक–टेढ़े
शोणित–रुधिर
शेष–लक्ष्मण

भक्त रसखान

सुगाइन संग–सुन्दर गौओं के साथ
मरकत–मणि

कामरिया–कमली
तड़ाग–तालाब
कलधौत–सुवर्ण
चायन–चाव से
पलोटत–दबा रहे हैं
कालिन्दी–यमुना
अघानी–तृप्त
अँसुवानी–अश्रुयुक्त
अंक–अंग
मुसुकानि–प्रसन्नता
बाट–मार्ग
कानि–मर्यादा
पाग–पगड़ी
माँझ–भीतर
अनब्याही–कुँवारी
ना सकात–निःशंक
कछोटी–लँगोटी
रहैं, पचिहारि–थक गये
लट्टू–मस्त
तरुन वारी–युवावस्था
छोहरा–बालक
बगराइगो–बिखेर गया
चितैबे–देखने
ठगौरी–ठगी
बावरी–पगली
एतिक–इतनी
छला–अँगूठी
गुंज–रत्ती
अधरान धरी–होठों पर धरी हुई
कुल-कानि–कुल की लज्जा
चित्र कढ़े–मूर्त्तिवत्
गोधन–गौएँ
खिरक–गौशाला
दोहनि–दूध दोहने का पात्र

महाकवि विद्यापति

आजुक–आज की
पड़ल–पड़ गया
नागर–प्रतिम
अपतोस–अफ़सोस
बिसरल–भूल गये
ककरा–किससे
श्रीखण्ड–चंदन
अओरि–और
परबोध–ज्ञान
हुतास–अग्नि

बिहरति–फटती
गेल–मार्ग
भाख–भाषा
पहु–प्रीतम
धैरज–धीरज
सुहाओन–सुहावना
तिरपित–तृप्त
जामिनअ–रात्रि
निदग्ध–जले हुए
तरे–तले
तिर–तट
पाइग्गह–पैदलों के
पलानिअउँ–भाग उठे
अनेक–अनेक
आनिआ–लाये गये
परक्कमेहि–पराक्रम
दीप दीपे–द्वीप द्वीपान्तर
सत्तिरूअ–शक्ति रूप
पाऐ–पैरो से
मम्म–मर्म
सद्द–शब्द
खोणि–पृथ्वी
वाल–बाल

वाढल–बड़े हो गये थे
काढल–निकाले गये
वज्ज–वज्र
सङ्गाम–युद्ध
अरिराअन्ह–शत्रु राजाओं
वेवि–दोनों
सहोअर–सहोदर
राअ गिरि–राजगिरि
चप्परि–छाते हुए
सीगिन–बारूद भरने के लिये खोखली सींग
कुरुम–कूर्म
पायक–पैदल
खग्गग्ग–तलवारें
मगोल–मंगोल
बुज्झइ–समझता था
भोअण–भोजन
कादम्बरि–मदिरा
लोअन–लोचन
जोअण–योजन
वलके–बेल
जोले–जोड़ते थे
बम्भन–ब्राह्मण

धाँगड़–धगगड़
गोरु–गऊ
मिसमिल–बिस्मिल्ला
हट्ट–बाजार
सांवर–शावर
चथइजे–चीथड़े
दुग्गम–दुर्गम
विभारि–निकालकर
लूडि–लूट
अरजन–आमदन
अन्याजे–अन्याय
कन्दल–युद्ध
थीर–स्थिर
पसओ–प्रीति
लटक–धगगड़
भोअण भष्खण–खाना पीना
आवत्त हुअ–आ रहा था
राउत–राजपुत्र

महाकवि देव

अलख–अदृश्य
नरनाहन–राजाओं
निहोरतो–प्रार्थना करता
पाथर–पत्थर
बोरतो–डुबा देता
दई–विधाता
मीच–मृत्यु
विलाने–लुप्त हो गये
मकरी–मकड़ी
पोत–जहाज
पाँख–पंख
झुनझुनियाँ–पायजेब
धुनियाँ–रुई धुनने वाला
वल्लूलनि–भँवर
सिखी–मोर
पयान–प्रयाण
जाँवन–जामुन
केसो–केशवदास
ताना रीरी ता धनं तताथीनै–गाने के बोल
ठयो–बना
उनयो–झुकते
चेटकी–कौतुकी
चेरो–दास
ख्याल–खेल
ऽयन–घर

घमात-धूप सेंकना
धमोयन-झाड़ियों
राजसिरी-राजश्री
झुपरी-झोपड़ी
खोखरी-शरीर
जंबुक-गीदड़
तुरिया-ज्ञान की दशा
पखेरू-पक्षी
रंकिनी-दरिद्र
छोही-अनुरागी
जकी-झकी
छोभ-क्रोध
छाहौं-छारा
सविता-सूर्य
अथाइन-बैठक
पयोधि-समुद्र
फेन-झाड़
पाँचन-पांचों
गहिरे-गर्व
औचक-अकस्मात्
आखर-अक्षर
घहरिया-घना शब्द करते हैं
झहर-झहर-झर २ शब्द करके
हहर-हहर-डर २ कर
फहर-फहर-काँप २ कर
उमहत-उमड़ते
अरविन्दु-कमल
मल्लि-मल्लिका
टिकासरो-टिकने की जगह
रहसि रहसि-प्रसन्न हो २ कर
उचकि उचकि-उछल २ कर
जकि जकि-भौंचका होकर
थिरात-ठहरती

महाकवि पद्माकर

गुन-ग्रामा-गुणवान्
छेम-क्षेम
दरियाव-समुद्र
उमहत-उमड़ते
काँची-कच्ची बात
दराज-दीर्घ
तुपकैं-तोप
चिल्लिका सी-बिजली सी
सनंकैं-सन् सन् शब्द करती
भनंकैं-भौंरों का शब्द
भर्भरा-घबराकर

झर्झरा–झर २ शब्द करके
गाज–बिजली
दिग्घ–दीर्घ
अचाका–अचानक
पन्नगाली–सर्पों की पंक्ति
दच्चे–धक्के
सिप्पे–सिपाही
टिप्पे–युक्तियाँ
अराबो–तोपें
अवाजैं–आवाज
सोक-सिंधून–शोकसमुद्र
बग्घान–बाघ
ती–स्त्री
थिति–स्थिति
रजत-पहार–चाँदी का पहाड़
जज्ञ–यज्ञ
थाप–प्रतिष्ठा
जकि-से–भौंचक्के से
चित्रगुप्त–१४ यमराजों में से एक, जो पापियों के पाप पुण्य का लेखा करता है
देवनदी–गंगा
फरद–स्मरणार्थ एक कागज पर लिखी वस्तुओं की सूची या लेखा

कुराही–कुमार्गी
कलही–लड़ाके
डरात हुतो–डरता था
कचरिहौं–दबाऊँगा
दगादार–धोखेबाज़
कछार–तट की नीची भूमि
छ्वै कै–छूकर
पतित-कतारे–पापियों की पंक्ति
मरजादा–मर्यादा
अंतरिच्छ–आकाश
कामद–अभीष्टदाता
मजेजवंत–स्वाभिमान
बसु–धन
सुबरन–सुन्दर अक्षर
बरबस–ज़बरदस्ती
नरिंद–राजा
घनसार–कपूर
मुसकाइबो–मुस्कराना
ततच्छ–तत्क्षण
चिल्लिन–वज्र
कराल–भयंकर

गजब्ब-गज़ब
हलाहल-हौद-विष का तालाब
कुच्छ-पेट
रुच्छ-क्रोध
तुनीरन-तरकश
मद-मैगल-मस्त हाथी
बकसे-दान दिये
लच्छ-लाख
दीह-दीर्घ
दावादारन-दावा रखने वाले
तिजारी-तीसरे दिन चढ़ने वाला बुख़ार, वेश्या तप
छहरै-फैली हुई
धुंधरित-धुँधला
परतच्छ-प्रत्यक्ष
फतूहन-विजय
पाक-सासन-इन्द्र
खोरी-गली
तराबोर-भली भाँति भीगा हुआ
उलीच-उछालना
हुरिहारन-होली खेलने वाले
मलारन-मल्हार राग
बितान-मंडप
कामदुघा-कामधेनु

महाकवि छत्रसाल

पुरन्दर-इन्द्र
करी-हाथी
अलकेस-कुबेर
विधि-विधाता
सहूरजुत-योग्यतापूर्वक
तोड़ादार-तोपची
उदंडनि-दुष्टों
पौन-पवन
पाटी-पीढ़ा
सकात-डरता था
छौना-लड़का
ललै-पुत्र
कसकी-फटी
खोर-खोर-गली-गली
अहेर-शिकार
सुबांसुरी-सुंदर बंसरी
लुनियतु हैं-काटते हैं
मेह नायक-इन्द्र
कंजनैन-कमलनेत्र
मघवाहि-इन्द्र को

सहल में–आसानी से
शौरि–श्रीकृष्ण का एक नाम
संभु-रानि–पार्वती
नखत-कलान-पति–चन्द्रमा
देव-पति-रानी–इन्द्राणी
परिचारिका–दासी
सुभानु–सूर्य
युग्म कर–दोनों हाथ
त्रिदेव–ब्रह्मा विष्णु महेश

जगन्नाथदास रत्नाकर

पावक-पहार–ज्वालामुखी
रुद्र–शिव
फुलिंग–चिनगारी
लुआर–लू
सीरी–शीतल
तपाकर–गरमी पहुँचाने वाला
थिरात–ठहरते
पंचसर–कामदेव
रमा–लक्ष्मी
परे थहरि–काँप उठे
बार–देर
उबारन मैं–उद्धार करने में
बितुंड–हाथी
पच्छिराज–गरुड़
पुंडरीक–श्वेत कमल
छत–घाव
अँगौछत–पोंछने लगे
मसूसि–दुःखी होकर
मैन–कामदेव
मलिंद–भौंरा
लूक–आग की लपट
सुरसरि–गंगा
बगर–महल
त्रिजामा–रात्रि
करेजो–कलेजा
किंसुक-प्रसून-जाल–पलाश पुष्प
मारुत–वायु